इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
समाज कार्य विद्यापीठ

BSW-122
समाज, सामाजिक संस्थाएं और सामाजिक समस्याएं

खंड

3

विवाह की सामाजिक संस्था

इकाई 1
विवाह और परिवारः जीवन साथी का चयन 155

इकाई 2
भारत में विवाह 177

इकाई 3
समाज, संस्कृति, धर्म और पारिवारिक मूल्य 192

इकाई 4
वैवाहिक जीवन और अपेक्षित भूमिका 208

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 4 का परिचय

खंड 3 'विवाह की सामाजिक संस्था' के संबंध में है। इस खंड में चार इकाइयाँ हैं। **इकाई 1** 'विवाह और परिवारः जीवन साथी का चयन' के बारे में है। इस इकाई में हमने कुछ अति महत्वपूर्ण अवधारणाओं की चर्चा की है। विवाह के अभिप्राय का वर्णन करने के अतिरिक्त, इसमें विवाह के कार्य, उद्देश्य, विवाह का ऐतिहासिक विकास, परिवार और परिवार के विभिन्न स्वरूपों के साथ जीवन साथी के चयन के बारे में वर्णन पर ध्यान दिया गया है। **इकाई 2** विवाह के विभिन्न प्रकारों से संबंधित है। इसमें विवाह की संकल्पना और संबंधित विचारों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त विवाह के विभिन्न स्वरूपों की तथा विशेष रूप से हिन्दुओं में विवाहों के स्वरूपों की चर्चा की गई है। **इकाई 3** समाज, संस्कृति, धर्म और पारिवारिक मूल्यों पर प्रकाश डालती है। पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूपों का वर्णन करने के साथ-साथ इसमें पारिवारिक मूल्यों की संरचना, पारिवारिक मूल्यों तथा इनकी संरचना पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयामों के प्रभावों का भी वर्णन किया गया है। **इकाई 4** वैवाहिक जीवन और अपेक्षित भूमिका के बारे में है। इस इकाई में वैवाहिक जीवन में अपेक्षित भूमिकाओं, भूमिकाओं में संघर्ष तथा विवाह के विभिन्न चरणों में बदलती भूमिकाओं जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों का वर्णन किया गया है।

कुल मिलाकर चारों इकाइयाँ अपने आप में अनोखी हैं तथा वैवाहिक जीवन एवं इसमें शामिल महत्वपूर्ण विषयों पर पर्याप्त जानकारी प्रदान करती हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 विवाह और परिवारः जीवन साथी का चयन

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विवाह का अर्थ

1.3 विवाह के कार्य और उद्देश्य

1.4 विवाह का ऐतिहासिक विकास

1.5 परिवार

1.6 पारिवारिक संरचनाओं के प्रकार

1.7 जीवन साथी का चयन

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

परिवार जीवन शिक्षा पर यह पाठ्यक्रम होने के कारण इस इकाई का उद्देश्य विवाह और परिवार के बारे में गहन समझ विकसित करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- परिवार और विवाह को परिभाषित कर सकेंगे;
- पारिवारिक जीवन में विभिन्न प्रकार के संबंधों की तुलना कर सकेंगे;
- विवाह के उद्देश्यों और कार्यों की चर्चा कर सकेंगे;
- विवाह और परिवार के विषय में और अधिक ज्ञान अर्जित करने की रुचि की पहचान कर सकेंगे; और
- इस ज्ञान को अपने जीवन की परिस्थितियों में लागू कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

परिवार मानव विकास क्रम में अनिवार्य अंग है जिसके बिना मानव का अस्तित्व असंभव था। जन्म के समय मानव शिशु शायद सबसे अधिक असहाय प्राणी होता है। लंबे समय तक उसको परिवार और समाज की सुरक्षा की आवश्यकता होती है। परिवार का प्रमुख उद्देश्य और आवश्यकता का यही कारण है।

बुनियादी पाठ्यक्रम में पारिवारिक जीवन, शिक्षा की आवश्यकता और महत्व का विवेचन किया गया था। विवाह क्या है एवं विवाह व परिवार के उद्देश्यों व कार्यों का इस इकाई में विवेचन पहले ही किया जा चुका है। पारिवारिक जीवन में शामिल प्रतिबद्धता के प्रति

गहन समझदारी, व्यक्ति को विवाह एवं परिवार के बारे में अधिक गंभीरता से सोचने में मदद करेगी।

इस इकाई में जीवन साथी के चुनाव के समय याद रखे जाने वाले विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जीवन साथी किसे और कैसे चुना जाए? ऐसे कुछ स्वाभाविक प्रश्न युवा वर्ग पूछ सकता है। इन प्रश्नों के उत्तर सामाजिक अपेक्षाओं एवं सामाजिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर दिए गए हैं जो जीवन साथी के चुनाव में सहायक हो सकते हैं।

1.2 विवाह का अर्थ

विवाह एक ऐसा सामान्य शब्द है जिससे हम अपने दैनिक जीवन में रूबरू होते रहते हैं। क्या आपने कभी इसके बारे में गंभीरता से सोचा है? विवाह का क्या अर्थ है? स्त्री-पुरुष के बीच का यह संबंध क्या केवल स्त्री-पुरुष के साथ-साथ रहने व बच्चे पैदा करने का संबंध है? क्या यह पुरुष निर्मित संस्था है? ऐसी संस्था कब अस्तित्व में आई? उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तरों के विषय में सोचना वास्तव में रोचक होगा। विशेष रूप से इनके अर्थ, क्षेत्र, उद्देश्य एवं विवाह के इतिहास के बारे में सोचना तो और भी अधिक रोचक होगा।

विभिन्न लोगों के लिए विवाह संबंध का अर्थ व उपयोगिता भिन्न-भिन्न हैं। कुछ के लिए विवाह मानव जाति के प्रसार के लिए स्त्री-पुरुष के बीच का संबंध है। कुछ व्यक्ति इसे यौन संबंधों के लिए लाइसेंस के रूप में लेते हैं। फिर भी एक वर्ग विवाह का अर्थ सहचारिता के एक साधन के रूप में लेता है। विवाह में इन सभी विचारों का समावेश है। यह एक बेहद जटिल संबंध है जिसे एक या दो वाक्यों में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों और दार्शनिकों ने विवाह के क्षेत्र व अर्थ के विषय में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए हैं।

विवाह मानव स्वभाव का अनिवार्य अंग नहीं है बल्कि यह मानव निर्मित संबंध अथवा परम्परा है जो प्रागैतिहासिक काल में भी विद्यमान थी। यह एक प्राकृतिक संबंध नहीं है बल्कि स्त्री व पुरुष के मध्य प्रतिबद्धता है। सभ्यता के विकास के साथ ही विवाह धार्मिक एवं वैधानिक स्वीकृति से सामाजिक कार्य बन गया। जैसा कि पहले बताया गया है, विवाह के विभिन्न अर्थ व उपयोगिताएँ हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

संबंध के रूप में विवाह

मानव संबंधों में विवाह सबसे गहरा व अधिक संपूर्ण संबंध है। प्रत्येक पीढ़ी की बुनियादी आवश्यकताओं और सामाजिक अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु विवाह संबंध संपूर्ण मानव इतिहास में विभिन्न रूपों में विद्यमान रहा है।

संस्था के रूप में विवाह

विवाह स्त्री-पुरुष के बीच शरीर, मन व आत्मा, भावनाओं व इच्छाओं का संगम है। इस संयोजन का सार प्रेम है। विवाह को एक प्राथमिक संबंध माना जाता है क्योंकि यह पति-पत्नी के बीच का निजी संबंध है। लिन यूतांग (Lin Yutang) ने विवाह का बहुत सुंदर वर्णन किया है। वह कहते हैं – "स्त्री जल है और पुरुष मिट्टी और मिट्टी जल को थामे रहता है और ठोस बनाता है जिसमें जल रहता है और बहता है– अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ।"

विवाह का शारीरिक पक्ष

जानवर संगत करते हैं लेकिन मनुष्य शादी करता है। जैविकीय (शारीरिक) दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि संगम करना एक जैवकीय तथ्य है जबकि विवाह एक सामाजिक विषय है। प्रजनन के लिए काम-भावना मूल प्रवृत्तियों में से एक है। परन्तु समाज के आरंभ से मनुष्यों में यह प्रवृत्ति निश्चित नियम व नियंत्रण में रही है। विवाह को जैविक प्रजनन को नियंत्रित करने वाली क्रियाविधि के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

पशु जगत में समागम के लिए कोई नियम निश्चित नहीं हैं क्योंकि उनका कोई समाज व सामाजिक नियम नहीं होता परन्तु मानव समाज में बहुत से सामाजिक नियंत्रण, धार्मिक सीमाएँ और विवाह के कानून भी हैं। मनुष्यों के बीच यौन संबंध स्वीकृत सीमा के अंदर ही मंजूर किया गया है। स्त्री-पुरुष के मध्य विवाह बच्चों के प्रजनन का पवित्र, जीवन भर का, व्यापक और प्रेमभरा संबंध है।

विवाह का सामाजिक पक्ष

हमने देखा कि मानव विवाह निश्चित जैविक तथ्य थोड़े हैं जबकि सामाजिक पहलू अधिक हैं। ये सामाजिक पहलू मानव समाज में सबसे महत्वपूर्ण हैं। विवाह का मूल आधार प्रेम है। विवाह में स्त्री-पुरुष के मध्य सच्चा प्रेम एक दूसरे के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होने में है। इसमें आत्मा और मन का मिलन होना चाहिए। पति-पत्नी की भोजन, मनोरंजन, पढ़ने आदि की रुचियाँ एक समान होनी चाहिए। इच्छाओं व भावनाओं का संबंध होना चाहिए; इन सब बातों में संपूर्ण, विशेष व जीवन भर एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना अंतर्निहित है।

विवाह का मनोवैज्ञानिक पक्ष

विवाह मानव अस्तित्व का अनिवार्य अंग है। विवाह में मनुष्य की संवाद और पूर्णता की मूल लालसा की स्वाभाविक परिणति होती है। मनुष्य स्त्री व पुरुष के रूप में अपनी संपूर्णता प्राप्त करता है। विवाह दो व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे को पूर्ण रूप से संपूर्ण जीवन देने का साधन है।

विवाह में स्त्री और पुरुष एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं। विवाह शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कमी, जो अकेले मनुष्य में होता है, को पूरा करता है। स्त्री व पुरुष की एक साथ रहने की दृढ़ व प्राकृतिक प्रवृत्ति को विवाह द्वारा ही संतुष्ट करना संभव है।

विवाह का वैधानिक पक्ष

स्त्री व पुरुष का संबंध वैध होना चाहिए। अतः विवाह को वैधानिक और सामाजिक स्वीकृति मिलनी चाहिए। विवाह की वैधानिक स्वीकृति विद्यमान सामाजिक नियमों व रीति-रिवाज़ों पर आधारित होती हैं जो एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न हो सकती हैं। विवाह केवल उनके लिए वैधानिक अनुबंध हो सकते हैं जो विवाह के मूल अधिनियम को पूरा करते हैं। भारत में विवाह के लिए लड़कियों की 18 वर्ष व लड़कों के लिए 21 वर्ष की न्यूनतम वैध आयु है।

समग्र रूप से हम कह सकते हैं कि विवाह के विभिन्न संदर्भ हो सकते हैं। इसकी वैधानिक, सामाजिक परिभाषा है और यह धार्मिक समूहों द्वारा माना जाने वाला पवित्र संबंध या अनुबंध के साथ-साथ एक संस्कार भी है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 विवाह के कार्य और उद्देश्य

क्या आपने कभी इसके बारे में सोचा है कि व्यक्ति को विवाह क्यों करना चाहिए? आपके मस्तिष्क में आने वाला प्रथम उत्तर मानव जाति के विस्तार के लिए हो सकता है। आइए, उत्तर खोजने का प्रयास करें।

संयोजन और प्रजनन के लिए विवाह

विवाह का उद्देश्य क्या है? यदि यह केवल प्रजनन के लिए है तो विवाह आवश्यक नहीं है। बेशक संयोजन और प्रजनन विवाह का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। विवाह में मेल वास्तुतः स्वयं के प्यार और प्रतिबद्धता का शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और अध्यात्मिक संवाद है।

शारीरिक संबंधों के लिए विवाह

बच्चे का गर्भ में आना यौन संबंध का स्वाभाविक परिणाम है। अतएव बच्चों की उत्पत्ति विवाह का आवश्यक उद्देश्य है। उसी के समान संयोजन, आपसी प्रेम, हर्ष और पति-पत्नी के बीच सुख भी उतना ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है। विवाह आपसी प्रेम व लगाव को प्रोत्साहन देता है। यह शारीरिक संतुष्टि को वैधानिक अभिव्यक्ति देता है।

सहभागिता और मित्रता के लिए विवाह

मानव जाति की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता घनिष्ठता से साथ रहने व एक दूसरे के प्रति वचनबद्ध हो जाना है। मित्रता क्या है? जेनेट किड के अनुसार, "मित्रता किसी दूसरे के जीवन में विशेषाधिकार की हैसियत रखना और अपने जीवन में उसे विशेषाधिकार की हैसियत प्रदान करता है। यह जिन्हें हम पसंद करते हैं उनके साथ स्वयं को बाँटना है।"

मित्रता वह मील का पत्थर है जो उस समय भी कायम रहती है जब शारीरिक इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। यह बच्चों के बड़े होने व उनके व्यवस्थित होने के बाद भी रहती है। यह समय के साथ-साथ केवल गहरी होती है। सहभागिता अथवा मित्रता का यही अर्थ है। यह मनुष्य में निःस्वार्थता की भावना में वृद्धि करके और प्रेम के लिए अपने सामर्थ्य को गहरा करके उसे समृद्ध बनाता है। अतएव विवाह प्रेम है, वह काम-भावना है, यह परिवार है परन्तु आखिरकार व अनिवार्य रूप से यह सहभागिता व मित्रता है।

समाजीकरण के लिए विवाह

विवाह वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास और समाजीकरण पूर्ण होता है। यह सुरक्षा, सहयोग व प्रेम के असंख्य अवसर प्रदान करता है। विवाह का अन्य उद्देश्य प्राकृतिक वातावरण देने के लिए परिवार बनाना है जिसमें व्यक्ति स्वयं को अनुभव कर सके और दूसरों के प्रति निष्ठा व सेवा की भावना रखे। यह समाज को सुदृढ़ आधार प्रदान करता है और बच्चों को विकसित होने के लिए स्थिर वातावरण उपलब्ध करता है।

परिपक्व संबंध के लिए विवाह

फिर भी विवाह का एक अन्य उद्देश्य विवाह में स्थायित्व द्वारा परिपक्वता प्राप्त करना है। बच्चों का पालन-पोषण व उनको शिक्षित करना भी विवाह का एक उद्देश्य है। अभिभावक का बच्चों से संबंध आत्मीय संबंध होता है।

विवाह के कुछ व्यावहारिक या उपयोगी पक्ष

1) यह स्त्री की सुरक्षा निश्चित करता है जिसे लंबे समय तक गर्भावस्था से गुजरना पड़ता है।
2) यह संतान को सुरक्षा प्रदान करता है।
3) यह स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करता है, जिससे समाज को स्थायित्व मिलता है।
4) यह संबंधों के द्वारा समाज को और अधिक सुदृढ़ बनाता है।
5) यह रक्त संबंधों को सरल बनाता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह के प्रमुख कार्य क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 विवाह का ऐतिहासिक विकास

विवाह के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन बेहद दिलचस्प है। इसका प्रारंभ कब हुआ? इसने वर्तमान स्वरूप व हैसियत कैसे अर्जित की? प्रागैतिहासिक युग में विवाह के बारे में तथ्य प्राप्त करना आसान नहीं है। इसके लिए हमें मानव-विज्ञानियों और अन्य लोक साहित्यों व परम्पराओं के अध्ययन पर निर्भर रहना होगा।

हालाँकि धार्मिक पुस्तकों में विवाह के बारे में उल्लेख है, लेकिन हम इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि धरती पर मानव जीवन के आरंभ के साथ ही विवाह अस्तित्व में आ गया था। प्रागैतिहासिक काल में लोग पशुओं की तरह रहते थे और उनके लिए कोई

सामाजिक नियम व बंधन नहीं थे। परन्तु पशुओं से श्रेष्ठ होने के कारण धीरे-धीरे मानव ने व्यवहार के कुछ सामाजिक रूप शुरू कर दिए।

मानव जाति की प्रारंभिक अवस्था में यौन जीवन और प्रजनन एक प्राकृतिक प्रक्रिया थी। धरती का कोई भी स्वामी नहीं था। जमीन रखने की चिंता किसी को नहीं थी। परन्तु धीरे-धीरे मनुष्य ने जमीन की जुताई शुरू की और वह मिट्टी की उत्पादकता के बारे में जानने लगा। इस ज्ञान ने उसे जमीन के स्वामित्व के लिए प्रेरित किया। जमीन के स्वामित्व ने झगड़ों और विवादों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप उन्होंने जमीन के स्वामित्व के लिए कुछ प्रकार के नियम व नियंत्रण बनाए। सामाजिक समझौता के सिद्धांत से यह प्रामाणित होता है।

ज़मीन जो पैदा करती है, के स्वामित्व की इच्छा ने उसे किसी भी ऐसी चीज जो उत्पादन करती हो, के स्वामित्व के लिए प्रेरित किया। यह जानने पर कि स्त्री बच्चों का प्रजनन कर सकती है, पुरुष ने अधिक से अधिक स्त्रियों का स्वामी बनकर अधिक से अधिक बच्चे पैदा करने चाहे। इसने भी झगड़ों और विवादों को जन्म दिया। धीरे-धीरे स्त्री को अपनाने के लिए प्रतिबंध व नियम बनाए गए। इसके परिणामस्वरूप सभी नियमों, कानूनों और परम्पराओं सहित विवाह की सामाजिक संस्था का जन्म हुआ।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह के ऐतिहासिक विकास की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 परिवार

विवाह की तरह परिवार भी एक जाना-पहचाना शब्द है। हम सभी परिवारों से ही आते हैं। हम अपने आसपास परिवारों को देखते हैं। परिवार हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। क्या हम इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं: परिवार क्या है? परिवार की ज़रूरत क्या है? परिवार का निर्माण कौन करता है? क्या यह केवल माता-पिता व बच्चों का संघ है? परिवार के सदस्यों के बीच क्या संबंध होता है? क्या परिवार मानवीय खोज है अथवा प्राकृतिक विकास क्रम है? क्या यह जानवरों में भी पाया जाता है? विभिन्न कालों और विभिन्न संस्कृतियों में परिवार के स्वरूप क्या हैं?

परिवार की आवश्यकता

परिवार मानव विकास क्रम की आवश्यक शर्त है जिसके बिना मानव का अस्तित्व संभव नहीं हुआ होता। मानव शिशु असहाय पैदा होता है। उसमें शारीरिक व मानसिक विकास की अंतः क्षमता होती है। परन्तु उसे पूर्ण परिपक्व होने में वर्षों लगते हैं। पशुओं के शिशु जन्म लेने के कुछ समय पश्चात् ही अपनी देखरेख करने योग्य हो जाते हैं। परन्तु मनुष्यों

में लम्बा गर्भकाल और शिशु की लम्बे समय तक असहाय अवस्था के कारण उसे लम्बे समय तक माता-पिता और परिवार के सदस्यों के साथ रहना आवश्यक होता है। इसके परिणामस्वरूप परिवार की संरचना हुई।

परिवार का विकासक्रम

इस ग्रह पर मानव के प्रकट होने से पहले भी अभिभावकों और उनकी संतानों के समूह के रूप में परिवार का अस्तित्व था। पक्षियों व उच्च स्तनधारी जीवों में परिवार देखे जा सकते हैं। चिम्पांजी एक ऐसा सामाजिक प्राणी है जो परिवार समूह में रहता है। वानर व मनुष्य के पारिवारिक जीवन में तुलना हो सकती है। जैसे कि साथी का चुनाव, नर व मादा में संबंध, पिता का नियंत्रण और माँ द्वारा बच्चे की प्रमुख रूप से देखरेख।

मनुष्य के पारिवारिक जीवन की तुलना में वानरों, स्तनधारियों व पक्षियों के पारिवारिक जीवन में बहुत अंतर होता है। जहाँ तक अन्य जन्तुओं का सवाल है तो पूरे विश्व में उनके पारिवारिक जीवन की प्रकृति लगभग समान है। परन्तु मनुष्यों के मामले में एक समाज का पारिवारिक व्यवहार दूसरे समाज से भिन्न होता है। पशुओं के परिवार में सदस्यों का व्यवहार मूल प्रवृत्ति से प्रेरित होता है जबकि मानव परिवार में यह संस्कृति से प्रेरित होता है। पशुओं के परिवार का स्वभाव मुख्यतः जैविक होता है जबकि मानव परिवार की संरचना व क्रियाएँ संस्कृति से निरूपित होती हैं।

बहुत से समाजशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य ने अपने विकास की प्रक्रिया में परिस्थितियों और ऐतिहासिक कारणों के आधार पर एक या दूसरे तरह के पारिवारिक स्वरूप का विकास किया होगा। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव परिवार की संरचना को निर्धारित करने वाले कारण भौगोलिक वातावरण, आर्थिक स्थिति और संस्कृति होते हैं न कि जैविकीय घटक। मनुष्यों में परिवार केवल एक जैविक समूह ही नहीं है, यह सर्वप्रथम और उससे भी अधिक एक सामाजिक संस्था है।

परिवार की परिभाषा

हमने देखा है कि विभिन्न स्थानों पर परिवार की संरचना और क्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए परिवार की परिभाषा देना कठिन है। परिवार की परिभाषा देते समय उन मानव समूहों की, जिनमें परिवार की अवधारणा प्रचलित है, समान बातों को शामिल करना होगा। प्रत्येक समय में और सभी स्थानों पर मानव परिवार में कुछ निश्चित विशेषताएँ एक समान होती हैं जो कि उसे अन्य सामाजिक समूहों से भिन्न करती हैं। अरनेस्ट डब्ल्यू बरगेस (Ernest W. Burges) और हार्वे जे. लॉक (Harvey J. Lock) के अनुसार ये विशेषताएँ निम्न हैं :

1) परिवार विवाह के द्वारा, रक्त अथवा गोद लेकर बनाया गया व्यक्तियों का समूह है। पति-पत्नी के बीच अनुबंध ही विवाह है और माता-पिता व बच्चों के बीच संबंध साधारणतया रक्त का होता है और कभी-कभी दत्तक ग्रहण (adoption) का संबंध होता है।

2) परिवार के सदस्य एक छत के नीचे विशेष रूप से एक साथ रहते हैं और एक घर-परिवार का निर्माण करते हैं। कई बार जैसा कि प्राचीन काल में होता था, घर इतना विशाल होता था कि उसमें तीन या चार या पाँच पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं। आज के समय में घर छोटे होते हैं जिसमें पति-पत्नी एक दो बच्चों के साथ अथवा बच्चों के बिना रहते हैं।

3) परिवार, व्यक्तियों के बीच पारस्परिक क्रिया और अंतर्संप्रेषण का संबंध है। वे पति और पत्नी, माता-पिता, बेटा-बेटी, भाई-बहन की भूमिकाएँ निभाते हैं। ये भूमिकाएँ समुदाय द्वारा परिभाषित की गई हैं।

4) परिवार एक आम संस्कृति का पोषण करते हैं जो सामान्य संस्कृति से ही उत्पन्न होते है। अक्सर यह संस्कृति पति-पत्नी की दो संस्कृतियों के मिलन से ही उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर परिवार को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता हैः

"परिवार विवाह के द्वारा, रक्त अथवा गोद लेकर बनाया गया व्यक्तियों का समूह है जो एक घर का निर्माण करते हैं। एक दूसरे से पति-पत्नी, माता-पिता, बेटा-बेटी, भाई-बहन की सामाजिक भूमिकाओं के रूप में पारस्परिक क्रियाएँ और अंतर्संप्रेषण करते हैं तथा एक समान संस्कृति की रचना व उसका पालन करते हैं।"

परिवार ऐसे लोगों का समुदाय है जो एक ही वातावरण में एक साथ रहते हैं जो स्वास्थ्य देखरेख का केन्द्र होता है, एक ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति रह सकता है, जहाँ व्यक्ति अपनी कुंठाओं, अपनी मूर्खताओं अपने गुस्से को उन लोगों के समाने स्वीकार कर सकता है जो प्रतिशोध नहीं लेते। यह प्रतिदिन के जीवन में होता है जब सब मुखौटे उतर जाते हैं व सारे ढोंग खुल जाते हैं जहाँ पति-पत्नी और बच्चे वास्तविक मनुष्य व पूर्ण मनुष्य को जानने की क्षमता ग्रहण करते हैं। लोगों ने परिवार का वैकल्पिक प्रबंध करने का प्रयास किया। परन्तु उनमें से कोई भी परिवार की तरह कुशल नहीं था। माता-पिता जब अपने बच्चों को प्रेम व सुरक्षा देते हैं तो बच्चे उत्तम रूप से उन्नति करते हैं। अभिभावकों को भी जीवन पर्यन्त प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है जिससे प्यार सिद्ध होता है।

भारतीय परिवार

संपूर्ण विश्व में परिवार पद्धति बदल रही है और पारिवारिक संबंध दिन-प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण बच्चों पर परिवार का प्रभाव कम हो रहा है। इन सब परिवर्तनों के बीच भारत में अभी भी स्थिर पारिवारिक ढाँचों का प्राचीन पारम्परिक रूप विद्यमान है। यह अभी भी समाज की बुनियादी इकाई है और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का माध्यम है। परिवार की अपनी दृढ़ता आज भी कायम है और यह समाज के मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारतीय परिवारों में एकता के बावजूद एक विशेष सामाजिक रूपांतरण हो रहा है। स्त्री के शक्तिशाली होने और उसके अधिक से अधिक शिक्षित होने से पारम्परिक परिवारों का स्वरूप धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। आधुनिकीकरण का मूल पश्चिमीकरण में है और इसने पारम्परिक परिवारों के मूल्यों व संरचना पर प्रश्न लगा दिया है। अभिभावकों का प्रभाव दिन प्रतिदिन कमज़ोर होता जा रहा है। परिवार में विद्यमान धार्मिक और नैतिक मूल्य धर्म निरपेक्षता और व्यावहारिक मूल्यों के लिए मार्ग प्रस्तुत कर रहे हैं।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) क्या आप ऐसा सोचते हैं कि एक व्यक्ति की संवृद्धि और विकास में परिवार की आवश्यकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 पारिवारिक संरचनाओं के प्रकार

परिवार के विकास क्रम के तीन प्रमुख ऐतिहासिक चरण निम्न हैं :

i) प्राचीन समाज का विशाल पैतृक परिवार।

ii) छोटे पैतृक परिवार जो मध्यकाल में पैदा हुए।

iii) आधुनिक प्रजातांत्रिक अथवा एकल परिवार जो औद्योगिक क्रांति और आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों की देन है।

चीन, भारत व जापान में पितृसत्तात्मक विशाल परिवार प्रचलित थे। यहाँ वरिष्ठ पुरुष सदस्य परिवार का मुखिया होता था। वह अपने बच्चों और पोतों के साथ चार या पाँच पीढ़ियों तक रहते थे। पिता जो परिवार का मुखिया होता था उसे परिवार के सभी सदस्यों के ऊपर अधिकार होता था। खेतीबाड़ी और पशुपालन के परिणामस्वरूप इस प्रकार के परिवारों का उदय हुआ।

विकास क्रम का दूसरा स्तर छोटे संयुक्त परिवार थे। इसमें पति-पत्नी व बच्चे और एक दो बुजुर्ग लोग तथा पति-पत्नी के एक दो अविवाहित भाई और बहन रहते थे। इस प्रकार के परिवार अधिकतर शहरों में होते थो, जहाँ उनके सदस्य उद्योगों में काम करते थे। इसमें भी वरिष्ठ पुरुष सदस्य को ही पूरे परिवार में सबसे अधिक अधिकार होते थे।

लोकतांत्रिक या एकल परिवार में केवल पति-पत्नी और उनके बच्चे होते हैं। आधुनिक समाज में इसी तरह की परिवार पद्धति देखने में आती है। इसमें पति-पत्नी अधिक जिम्मेदारी निभाते हैं और ज्यादा आजाद रहते हैं। वे अपने निर्णय स्वयं ले सकते हैं। वयस्क होने पर बच्चे भी उनके निर्णयों में शामिल हो सकते हैं।

भारत में तीन प्रकार के परिवार पाए जाते हैं, जो लगभग ऐतिहासिक परिवार व्यवस्था के समान हैं। वे निम्न हैंः

i) विशाल संयुक्त परिवार

ii) छोटे एकल परिवार

iii) वंश अथवा विस्तारित परिवार

i) विशाल संयुक्त परिवार

विशाल संयुक्त परिवार लगभग विशाल पितृसत्तात्मक परिवारों की तरह होते हैं जहाँ तीन या चार पीढ़ियाँ अपने माता-पिता व संतानों के साथ एक साथ रहती हैं। यह ग्रामीण क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ये परिवार अधिकतर खेतीहर परिवार होते हैं।

संयुक्त परिवार के लाभ

संयुक्त परिवार बूढ़े व बीमार सदस्यों को आश्रय देता है; बेरोज़गार सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा और युवा दम्पत्ति को सहयोग देता है। बच्चे सुरक्षा व दुलार के वातावरण में बड़े होते हैं। नव-विवाहित दम्पत्ति पारिवारिक जीवन और बच्चों की देखरेख की शिक्षा पाते हैं। पुत्र अपने पिता, चाचा और दादा से प्रशिक्षित होते हैं। पुत्रियाँ अपनी माताओं, चाचियों और दादी से प्रशिक्षित होती हैं।

संयुक्त परिवार में बुजुर्गों के चातुर्य अनुभव का लाभ उठाया जाता है। संयुक्त परिवार के अपने मूल्य व व्यवहार के अपने नियम होते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिलते हैं। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि संयुक्त परिवार सहायता की एक ऐसी छतरी है जो आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है तथा अनौपचारिक परामर्श उपलब्ध कराता है।

संयुक्त परिवार की हानियाँ

संयुक्त परिवार में सर्वोच्च अधिकार वरिष्ठ पुरुष सदस्य के पास होता है। अतः पूरे परिवार को उसकी योग्यता व दक्षता के अनुसार चलना होता है। परिवार के छोटे सदस्य कोई उत्तरदायित्व व कार्य करने की पहल नहीं कर सकते हैं। इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं है, विशेषकर महिलाओं के लिए। परिवार का मुखिया परिवार से बाहर हो रहे सामाजिक परिवर्तनों से सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ हो सकता है, जिससे पुराने मूल्यों व परम्पराओं का स्थायीकरण होगा।

ii) छोटे एकल परिवार

एकल परिवार में पति-पत्नी अपने बच्चों के साथ रहते हैं। ऐसा अक्सर शहरी क्षेत्रों में पाया जाता है। ऐसे परिवारों में पति-पत्नी दोनों ही कमाऊ सदस्य हो सकते हैं।

लाभ

पति-पत्नी को अपने विचारों के अनुसार कार्य करने की आज़ादी होती है। इसमें आर्थिक सुरक्षा व व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक होती है। इस प्रकार के परिवार सामाजिक परिवर्तनों को बहुत जल्दी अपना लेते हैं। इन परिवारों में सभी सदस्यों के लिए अधिक कार्य व दायित्व होते हैं।

हानियाँ

इन परिवारों के सदस्यों को सहायता व मार्गदर्शन देने वाला कोई नहीं होता, विशेषकर जब कोई विवाद उत्पन्न होता है। संयुक्त परिवार में उपलब्ध व्यावहारिक ज्ञान व भावनात्मक सुरक्षा का एकल परिवारों में सर्वथा अभाव होता है। बच्चों की देखभाल करने वाला कोई नहीं होता। बच्चे दादा-दादी का प्यार व सुरक्षा की कमी अनुभव करते हैं। कामकाजी माताएँ अपने बच्चों को नौकरों अथवा देखरेख केन्द्रों में छोड़ने को मज़बूर होती हैं।

iii) वंश अथवा विस्तारित परिवार

यह संयुक्त परिवार व एकल परिवार का मध्य-मार्ग है। पति-पत्नी और बच्चे अपने दादा-दादी के साथ रहते हैं।

गुण

इस तरह के परिवारों में संयुक्त परिवार और एकल परिवार के सभी गुण विद्यमान रहते हैं, बशर्ते कि दादा-दादी तानाशाह न हों। बच्चों की देखरेख अच्छी होती है। दादा-दादी को भी अकेलापन महसूस नहीं होता और वे भी अपने बच्चों व पोता-पोती के साथ प्रसन्न रहते हैं। माता-पिता अपने नव विवाहित पुत्र व पुत्री को पूर्ण सुरक्षा व मार्गदर्शन दे सकते हैं।

दोष

यदि पुत्र अथवा पुत्री के साथ रहने वाले माता-पिता बहुत अधिक तानाशाह हैं तो युवा युगल अपनी वैयक्तिकता एवं स्वतंत्रता खो सकते हैं। वहाँ सास–ससुर की समस्या हो सकती है। विवाह के विकास के लिए आवश्यक है कि युवा युगल अपना जीवन स्वयं जीएँ।

प्रत्येक परिवार पद्धति के अपने गुण-दोष होते हैं। परन्तु यदि सदस्य सहयोगी हैं और एक दूसरे का ख्याल रखते हैं तो दोषों को कम किया जा सकता है। नव विवाहित युगल जो अपना पारिवारिक जीवन शुरू करता है उसे एकल परिवार की स्वतंत्रता व लाभ मिलने चाहिए और संयुक्त परिवार की भावनात्मक सुरक्षा व व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। उन्हें 'घर' का एहसास होना चाहिए जहाँ वे पूरी तरह से आराम व मनोरंजन कर सकें और बिना मुखौटे के रह सकें।

परिवार के कार्य

परिवार समाज की बुनियादी इकाई है। आज सामाजिक परिवर्तनों के कारण परिवार बहुत सी समस्याओं का सामना कर रहा है। परिवार में समस्याओं के बावजूद परिवार अभी भी विद्यमान हैं क्योंकि ये बड़े पैमाने पर बच्चों, वयस्कों व समाज की आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। परिवारः

1) वंश बढ़ाते हैं।
2) परिवार की सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाते हैं।
3) परिवार जीने व विकास के लिए शारीरिक सुरक्षा और भौतिक अवसर उपलब्ध कराता है।
4) बच्चों व वयस्कों की भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा उनका सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास करता है।
5) अपने सदस्यों में स्वीकार्य नैतिक मानदंड़ों और सामाजिक रूप से वांछनीय गुणों का विकास करता है।
6) खाना, सोना, स्कूल कार्य आदि के प्रावधानों के ज़रिए अपने सदस्यों को जीने और रहने के लिए एक सुचारू तंत्र विकसित करता है।
7) परिवार के सदस्यों में व उनके पड़ोसियों में मृदु संबंधों का विकास करता है।

इस प्रकार परिवार सदस्यों की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

परिवार की सामाजिक भूमिका

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त परिवार की सामाजिक भूमिका भी होती है। समाज की मूल इकाई होने के कारण परिवार का समाज से सजीव व सहज संबंध होता है। परिवार से ही नागरिक आते हैं और परिवार ही सामाजिक गुणों का प्रथम विद्यालय है। परिवार बालक और समाज के बीच सेतु है।

परिवार में बालक परस्पर आदर, दूसरों के लिए सोचना, सद्भावना-सेवा, आपसी भाईचारा, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व आदि सीखता है। ये सामाजिक जीवन के मूल तत्व हैं। अतः समाज को मानवीय और वैयक्तिक बनाने के लिए परिवार सबसे प्रभावकारी माध्यम है। परिवार मूल्यों का सम्प्रेषक (ट्रांसमीटर) व रखवाला है।

समाज को परिवार का आदर व पालन पोषण करना चाहिए। परिवार सामाजिक संरचना की पहली कोशिका और पहली अनिवार्य सामाजिक इकाई है। विकसित देशों को अब इस तथ्य का अहसास हो चुका है कि उनके बिखरे हुए परिवार एक बहुत बड़े सामाजिक पतन की ओर उन्मुख हैं। अतः वे अभिभावकों को पारिवारिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। विवाह और परिवार एक ऐसा संबंध है जिसका कोई विकल्प नहीं है। इनका स्थान कोई नहीं ले सकता। आप ऐसा भी कह सकते हैं कि जब तक परिवार है मानव जाति रहेगी।

बोध प्रश्न v

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) परिवार के कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

1.7 जीवन साथी का चयन

अब तक आप विवाह व परिवार के बारे में बहुत कुछ जान चुके हैं। अब आप इस प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में होंगे कि 'आप अपने जीवन साथी का चयन कैसे करेंगे?' विवाह एक जीवन पर्यन्त चलने वाला संबंध व प्रतिबद्धता है। अतः जीवन साथी का चुनाव करना बहुत महत्वपूर्ण है। एक आदर्श जीवन साथी का चुनाव सफल विवाह की एक मूल आवश्यकता है।

मान लीजिए कि आप एक यात्रा पर जा रहे हैं। आप एक ऐसा साथी चाहेंगे हैं जो आपसे हर तरह से सहमत हो। अतः आप उस साथी के बारे में क्या कहेंगे, जिसे जीवन पर्यंत आपके साथ चलना है? विवाह, जन्म एवं मृत्यु सहित जीवन की तीन प्रमुख घटनाओं में से एक है। जन्म और मृत्यु हमारे नियंत्रण से बाहर है। विवाह किसी हद तक निश्चित किया जा सकता है। हम यह निर्णय कर सकते हैं कि किससे और कब विवाह करना है?

अरबी में एक प्रचलित कहावत है कि "यदि आप घोड़ा चुनना चाहते हैं तो सौ घोड़ों में से चुनो, यदि मित्र चुनना है तो यह हजार में से होना चाहिए परन्तु यदि पत्नी है तो यह हजारों में से होनी चाहिए।" यह दर्शाता है कि विवाह के लिए जीवन साथी का चुनाव

कितना महत्वपूर्ण है। यह चुनाव आकस्मिक अथवा लापरवाही से नहीं होना चाहिए। इसे काफी सोच समझकर करना चाहिए।

जीवन साथी के चयन में जिन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, उन पर बहुत कम लोग विचार करते हैं। यह आम धारणा है कि विवाह स्वर्ग में तय होते हैं या यह भाग्य या ईश्वर की इच्छा पर है। परन्तु ऐसा नहीं है कि इसे पूर्ण रूप से भाग्य पर छोड़ दिया जाए। चुनाव में वैज्ञानिक दृष्टि होनी चाहिए। जीवन साथी के चुनाव में कुछ निश्चित पैमाने हैं।

जीवन साथी के चुनाव की पद्धति एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न हो सकती है। कुछ संस्कृतियों में विवाह दो परिवारों के बीच सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था है। इनमें जीवन साथी का चुनाव अभी भी माता-पिता का दायित्व होता है। माता-पिता अपनी संतान के लिए वर अथवा वधू का चुनाव करते हैं। इस संबंध में युवा दंपत्ति की अपनी पसंद बहुत कम होती है। उनके पास विवाह से पूर्व जान-पहचान का अवसर भी बहुत कम होता है। इस तरह के विवाह को आयोजित विवाह (arranged marriage) कहते हैं।

आयोजित विवाह की जगह अब युवाओं में स्वयं जीवन साथी चुनने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

दोनों पद्धतियों के अपने गुण-दोष हैं। जब माता-पिता द्वारा जीवन साथी का चुनाव किया जाता है तो सामाजिक व आर्थिक तत्वों पर जोर दिया जाता है। वे युवाओं के आपसी संबंधों व प्रेम भावना पर बहुत कम ध्यान देते थे अथवा अनदेखा कर देते थे। युवा अपना चुनाव व्यक्तिगत आकर्षण व समान समझदारी के आधार पर करते हैं। वे पैतृक पैमाने जैसे जाति, धर्म, आर्थिक सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं भी दे सकते हैं।

सर्वोत्तम तरीक़ा तो यह है कि माता-पिता के मार्ग निर्देशन तथा उनकी सहमति लेकर युवा अपने जीवन साथी का चुनाव स्वयं करें। यह पद्धति मार्गदर्शन पद्धति के नाम से जानी जाती है।

फिर भी अभिभावकों को बिना अधिक चिंता अथवा झिझक दर्शाए अपने बच्चों का मार्गदर्शन करना चाहिए। युवाओं को जहाँ तक हो सके अपने जीवन साथी का निर्णय करने की अनुमति देनी चाहिए। परन्तु हर बार उनके अभिभावक ही उनके नियंत्रक होने चाहिए। साथ ही अभिभावकों को यह आभास भी नहीं देना चाहिए कि उनके मस्तिष्क में उनके लिए निर्णय निश्चित है। युवाओं को स्वतः ही अपने अभिभावकों पर विश्वास होना चाहिए, उनके अनुभव और बच्चों के लिए उचित फैसले करने की इच्छा पर विश्वास होना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा गया था विवाह एक जीवनपर्यन्त संबंध व वचनबद्धत्ता है। कुछ ऐसे गुण और सामाजिक अपेक्षाएँ हैं, जिसके होने से दंपत्ति की आम रूप से प्रशांसा की जाती है। पति-पत्नी के बीच समान परिपक्वता स्वास्थ्य, व्यावहारिक पद्धति अथवा चरित्र, जाति व धर्म, आर्थिक स्तर, शिक्षा और बौद्धिकता, आचार-व्यवहार और मूल्य अथवा जीवन के प्रति अनुकूल संबंध होना चाहिए। अब हम इनका क्रमानुसार अध्ययन करेंगे।

परिपक्वता (Maturity)

परिपक्वता के अंतर्गत शारीरिक परिपक्वता, भावनात्मक परिपक्वता, सामाजिक परिपक्वता और बौद्धिक परिपक्वता शामिल हैं। परिपक्वता एक ऐसी अवधारणा है जिसके अंतर्गत बहुत सी चीजें शामिल हैं। जब हम कहते हैं कि जीवन साथी में विवाहित जीवन के प्रति परिपक्वता होनी चाहिए तो इसका अर्थ है कि परिवार के प्रति उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से उठाने की योग्यता होनी चाहिए।

शारीरिक परिपक्वता के अंतर्गत आने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से आयु एक है। भारतीय विवाह अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 18 वर्ष व पुरुष के लिए 21 वर्ष है परन्तु व्यावहारिक अनुभव में देखा गया है कि स्त्री के लिए आदर्श आयु 21 से 24 और पुरुष के लिए 25 से 30 वर्ष के बीच है। इस आयु तक वे शारीरिक रूप से परिपक्व व भावनात्मक रूप से स्थिर हो जाते हैं। यदि पुरुष अथवा महिला में शारीरिक परिपक्वता नहीं होगी तो उन्हें वैवाहिक सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई आ सकती है और वे माता-पिता के रूप में और पति-पत्नी के रूप में अपने उत्तरदायित्व नहीं निभा पाएँगे।

पति-पत्नी के बीच आयु का अंतर कितना होना चाहिए? किसे बड़ा होना चाहिए? सामाजिक मान्यता है कि पुरुष को स्त्री से बड़ा होना चाहिए और दोनों के बीच आयु का अधिक अंतर नहीं होना चाहिए परन्तु बहुत से व्यावहारिक कारणों से इस पर दृढ़ रहना संभव नहीं है। फिर भी बाद में जटिलताओं से बचने के लिए इस पर सदैव दृढ़ रहना ही अच्छा रहेगा। विवाह संबंध टूटने के अनेक कारणों में से एक कारण पति-पत्नी के बीच बहुत अधिक आयु का अंतर है।

भावनात्मक परिपक्वता (Emotional Maturity)

इसका अर्थ भावनाओं व प्रेम पर नियंत्रण रखना है। भावनात्मक परिपक्वता आत्मसंयम व आत्मत्याग की भावना के विकास में मदद करती है। यह सुखी वैवाहिक जीवन के लिए नितांत आवश्यक है। जीवन में संकट की स्थिति में ही भावनात्मक परिपक्वता की जाँच की जा सकती है। उस स्थिति में एक परिपक्व व्यक्ति ही अपने कार्य को दिशा देगा। कठिनाइयों पर नियंत्रण करेगा और अपरिहार्य स्थिति को शालीनता व शीतलता से स्वीकार करेगा, जबकि एक अपरिपक्व व्यक्ति के लिए कोई भी संकट झल्लाहटपूर्ण हो सकता है।

भावनात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति अपने मन को व्यथित होने से रोक सकता है व उसमें निजी संबंधों को स्थिर व सुचारू बनाए रखने की योग्यता होगी। वह सामान्य असुविधाओं व निराशाओं को झेलने में सक्षम होगा तथा शक व ईर्ष्या को दूर करने में सक्षम होगा। संक्षेप में उसमें लेने व देने की योग्यता होगी जोकि प्रेम की योग्यता है।

परिपक्व व्यक्ति की अन्य विशेषता है सहानुभूति। यह दूसरों की भावनाओं को समझने की योग्यता है। इसमें दूसरों की ज़रूरतों को समझने की इच्छा व उनको पूरा करने के दायित्व को समझना शामिल है। विवाह करने का अर्थ है जीवन भर के उत्तरदायित्व को अपना लेना। पति-पत्नी को एक दूसरे की ज़रूरतों को पूरा करना, बच्चों को बड़ा करना, परिवार को वित्तीय सहयोग देना और परिवार के सदस्यों की देखरेख करनी होती है। विवाह के दायित्व का एक अंग जीवन पर्यन्त समझौता है। इसका संबंध स्थायित्व से है जोकि परिपक्वता से आती है।

बोलने से पहले सोचना और दूसरों से बात करने के लिए तत्पर रहना भावनात्मक परिपक्वता के स्पष्ट चिह्न हैं। यह पति-पत्नी संबंध में बेहद अनिवार्य है। भावनात्मक परिपक्व व्यक्ति में सर्वप्रथम चिंतन की अंतर्दृष्टि व दूर दृष्टि होती है। वह अपने साथ-साथ अपने आसपास की स्थिति का भी वास्तविक रूप में मूल्यांकन कर सकता है। वह जीवन के तथ्यों का यथार्थवादी रूप से सामना कर सकता है और अपने कार्यों के परिणाम के लिए पहले से तैयार रहता है। उसमें स्वतंत्रता की भावना बढ़ती है। वह अपने निर्णय स्वयं लेने के योग्य होता है।

विवाह के लिए आवश्यक परिपक्वता एक दिन में प्राप्त नहीं की जा सकती। बालक के विकास के हर स्तर पर उसकी विभिन्न ज़रूरतों को संतुष्ट करके ही भावनात्मक परिपक्वता प्राप्त की जा सकती है। भावनात्मक परिपक्वता प्राप्त करने के लिए बाल्यावस्था में भावनाओं का उचित अनुशासन आवश्यक है जिसके परिणामस्वरूप आत्मविश्वास, आत्म नियंत्रण और स्नेहिल परिपक्वता आती है।

स्नेहपूर्ण परिपक्वता (Affectional Maturity) क्या है? यह शब्द आपके लिए अपरिचित हो सकता है। यह भिन्न वर्ग के लोगों से संबंध बनाने की क्षमता है। शिशु सर्वप्रथम स्वयं में अथवा अपनी माता में ही रुचि लेता है। यह रुचि विद्यालय जाने पर अपने साथ खेलने वाले साथियों में परिवर्तित हो जाती है तथा वयस्क होने पर विपरीत लिंग के प्रति परिवर्तित हो जाती है। जो व्यक्ति विवाह के लिए तैयार होता है उसमें ये स्नेहपूर्ण परिपक्वता होनी चाहिए जिससे कि पति-पत्नी का अच्छा संबंध बन सके। यह वैवाहिक समन्वय की मूल आवश्यकता है।

सामाजिक परिपक्वता (Social Maturity)

जब कोई स्वयं को दूसरों से आत्मरहित व उत्तरदायी रूप से संबंध बनाता है तो यह सामाजिक परिपक्वता का उदाहरण है। किसी को भी तुरंत इच्छापूर्ति व निजी इच्छाओं की संतुष्टि के बारे में नहीं सोचना चाहिए। सामाजिक परिपक्वता के प्रमुख लक्षण है – दूसरों का आदर करना, ईमानदारी, उन्मुक्तता, साहस और परिवार की जो भी ज़रूरतें हों, उन्हें पूरा कराना।

भावनात्मक परिपक्व व्यक्ति का सामाजिक रूप से परिपक्व होना आवश्यक नहीं, यदि उसे सामाजिक जीवन का अनुभव नहीं है। विवाह पूर्व जीवन की पूर्णता से ही सामाजिक परिपक्वता आती है। प्रत्येक लड़के व लड़की को विवाह से पूर्व सामाजिक जीवन का अनुभव होना चाहिए। सामान्यतया शिक्षा समाप्ति पर युवा रोज़गार में लग जाते हैं और उनके पास जीवन के उत्तरदायित्वों को समझने व लोगों से मिलने-जुलने का खाली समय होता है। इस समय के दौरान वे विपरीत लिंग के व्यक्ति से मिल सकते हैं जिसे वे बाद में जीवन साथी के रूप में चुन सकते हैं। यह कपोल कल्पनाओं का समय होता है। फिर भी विवाह पूर्व यह खाली समय सामाजिक परिपक्वता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। जीवन साथी ढूँढ़ने के बाद वे अंततः व्यवस्थित होकर विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। अपनी कल्पना में अपरिचित भिन्न लिंग में अरुचि लेना सामाजिक परिपक्वता का गुण है। वे एक व्यक्ति विशेष से संबंध बनाने व उनसे समझौता करने को तत्पर रहेंगे।

कुछ समय के लिए स्वतंत्र होना भी महत्वपूर्ण है। माता-पिता से तुरंत स्वतंत्र होने के बाद विवाह के बंधन में बंधना जल्दबाजी है। खाली समय को सुविधानुसार प्रयोग किया जा सकता है। नौकरी बदल सकते हैं। पैसे और समय की उपलब्धता के अनुसार घूमने जा सकते हैं। किसी दूसरे की इच्छाओं के बारे में परामर्श की ज़रूरत नहीं और न किसी की मनःस्थिति का ख्याल करना है।

लड़कियों को स्वयं को साबित करना व अपने माता-पिता और अपने विपरीत लिंग को यह बताना चुनौतीपूर्ण लग सकता है कि वे अपनी मदद स्वयं करने व अपना भाग्य निर्माण करने के योग्य हैं। चूँकि बाल्यकाल व युवाकाल में उन्हें लड़कों की अपेक्षा अधिक नजदीक से निरीक्षित किया जाता है, इसलिए उन्हें अभी अपनी निजी पहचान बनानी है। भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों को सामाजिक बनने व सामाजिक परिपक्वता प्राप्त करने के लिए खाली समय नहीं मिलता। ऐसा इसलिए है क्योंकि अपनी स्कूली शिक्षा या कॉलेज शिक्षा समाप्त करते ही उनका विवाह हो जाता है। उनमें से अधिकतर को घर से बाहर कार्य करने की अनुमति नहीं होती। यह विवाह के संबंध में वास्तविक कमी है।

बौद्धिक परिपक्वता

बौद्धिक परिपक्वता का अर्थ है व्यक्ति में घटनाओं, स्थितियों व समस्याओं को समझने की योग्यता होना। यह व्यक्ति के विचारों, निर्णयों को बिना किसी पर निर्भर हुए प्रतिपादित करने की योग्यता है। बौद्धिक परिपक्वता को विकसित करने के लिए उसका शैक्षणिक स्तर अपने सामाजिक स्तर के अनुसार होना चाहिए। यदि वह बौद्धिक रूप से परिपक्व है तो उसे अपने जीवन को अर्थ व उद्देश्य देने में अवश्य समर्थ होना चाहिए।

जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हम स्वयं को धीरे-धीरे समझना व अपना मूल्यांकन करना सीखते हैं। हम अपनी कमजोरियों व शक्तियों, अपनी क्षमताओं व अक्षमताओं को जानने लगते हैं। हम अपनी भावनाओं, विचारों और व्यवहार के भीतर झाँकना सीखते हैं। हम दूरदृष्टि भी विकसित कर लेते हैं। हम जीवन की सच्चाइयों का यथार्थवादी रूप से सामना करना सीखते हैं तथा अपने कार्यों के परिणाम के लिए तैयार रहते हैं। हम अपने व्यवहार के परिणामों का पूर्वानुमान लगाना सीखते हैं। हम अपनी इच्छाओं को अपने विचारों व क्रियाओं पर पूर्णतया हावी होने की अनुमति नहीं देते।

परिपक्व विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति परिपक्व क्रियाओं और व्यवहार के रूप में होती है। हम अपने व्यवहार में नियंत्रण व लचीलापन लाते हैं। हम न तो सख्त होते हैं और न ही विवश होते हैं बल्कि स्थिति के अनुसार कार्य करते हैं हम अधिकार व अनुशासन के साथ-साथ उत्तरदायित्व व शक्ति को स्वीकार करते हैं। हम अन्य लोगों के साथ सहयोग करना व जीवन में आवश्यक सामंजस्य तथा अनुकूल न बनाना सीखते हैं।

व्यक्ति विशेष के विवाह की योजना बनाने से पूर्व उसमें बौद्धिक परिपक्वता के ये लक्षण होने चाहिए। विवाह में वांछनीय व्यक्तित्व के विकास और सामंजस्य बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है। दूसरों के व्यवहार को समझने के लिए आत्मबोध आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए दूसरे के व्यवहार को जानना एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अच्छे वैवाहिक सामंजस्य के लिए स्वयं के बारे में ज्ञान होना आवश्यक कारक है।

केवल बौद्धिक परिपक्व व्यक्ति ही दूसरों की सीमाएँ जान सकता है। एक व्यक्ति जिसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती वह कुंठित हो जाता है। अत्यधिक कुंठा को झेलने के लिए बौद्धिक परिपक्वता आवश्यक है। विवाहित युगल को कठिन परिस्थितियों का बुद्धिमत्ता से सामना करने व उचित निर्णय लेने के लिए कुंठा झेलने की बहुत अधिक क्षमता होनी चाहिए।

अब हम देख चुके हैं कि जीवन साथी के चुनाव में परिपक्वता कितनी महत्वपूर्ण है। केवल वही व्यक्ति वैवाहिक जीवन के लिए अच्छा साथी होगा जिसमें सभी प्रकार की परिपक्वताएँ होंगी। अक्सर व्यक्ति की परिपक्वता का सही अनुमान लगाना आसान नहीं होता। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के उत्तम गुण दिखाना चाहता है तथा व्यक्तित्व के नकारात्मक पहलू को छिपाने का प्रयास करता है। इसलिए जीवन साथी के चुनाव में बाह्य व्यक्तित्व व व्यवहार के पीछे जाकर देखना आवश्यक हो जाता है। आपको विभिन्न स्थितियों व परिस्थितियों में व्यक्ति विशेष के व्यवहार को नजदीक से अवलोकन करना होगा। एक व्यक्ति की संकटपूर्ण व विकट परिस्थिति में की गई क्रियाओं से उस व्यक्ति विशेष के बारे में तथा उसकी परिपक्वता का पता चलता है।

स्वास्थ्य और शारीरिक संरचना

जीवन साथी के स्वास्थ्य का खुशहाल वैवाहिक जीवन से गहरा संबंध होता है। इसलिए जीवन साथी के चयन के समय देखा जाने वाला यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। स्वस्थ बच्चों

के लिए माता-पिता का स्वस्थ होना आवश्यक है। कुछ पश्चिमी देशों में विवाह से पहले जीवन साथी को चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होता है। यह बहुत उत्तम है विशेषकर लोगों को वंशानुगत बीमारियों से बचाने के लिए।

ऐसे व्यक्तियों में वैवाहिक संबंध उचित नहीं है जिनके बीच नज़दीकी रक्त संबंध हो। ऐसे दम्पत्तियों के बच्चों में दोनों परिवारों की वंशानुगत बीमारियाँ हो सकती हैं। खून के RH कारक को देखना भी आवश्यक है। यदि पति-पत्नी दोनों के समूह RH भिन्न हैं अर्थात् धनात्मक व ऋणात्मक हैं तो यह बच्चों को प्रभावित करता है। अतः यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवन साथी का ब्लड ग्रुप एक सा अर्थात् मेल का हो।

भविष्य में कठिनाइयाँ व संबंध टूटने से रोकने के लिए यदि शक हो तो विवाह पूर्व एच.आई.वी. जाँच होनी चाहिए। व्यक्ति में स्वास्थ्य दोष होने का अर्थ व्यक्ति को विवाह से रोकना नहीं है बल्कि यह आवश्यक है कि दोनों को इसके बारे में ज्ञान हो और वे इसके परिणामों का एक साथ सामना करने के लिए तैयार रहें।

जीवन साथी के चुनाव में शारीरिक संरचना एक अन्य कारक है। शारीरिक संरचना जैसे ऊँचाई, वजन, रंग और सामान्य व्यक्तित्व में ज्यादा अंतर नहीं होना चाहिए। कुछ लोगों द्वारा शारीरिक आकर्षण व शारीरिक संरचना को बहुत महत्व दिया जाता है। भारतीय समाज में सामान्यतः माना जाता है कि पति का शारीरिक गठन, पत्नी से बड़ा होना चाहिए। सामान्य सुंदरता के बारे में आम धारणा है कि स्त्री में पुरुष से अधिक सुंदरता होनी चाहिए। पुरुष में पौरुष देखने का प्रचलन है।

शारीरिक व्यक्तित्व और सुंदरता सापेक्ष शब्द हैं और संस्कृतियों के अनुसार बदलते रहते हैं। जीवन साथी के चुनाव में यह बहुत महत्वपूर्ण तथ्य नहीं है। वैसे भी चुनाव के लिए सुंदरता प्रमुख कारण नहीं होना चाहिए। एक चीनी कहावत है कि "सुंदरता के आधार पर स्त्री से विवाह करना उसी तरह है जैसे किसी इमारत को उसकी बाह्य खूबसूरती के आधार पर खरीदना।" युवा लोग इस मापदंड को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं जो उचित नहीं है।

व्यावहारिक कौशल अथवा चरित्र और आचरण

यदि आप किसी पाठ्यक्रम में दाखिला चाहते हैं तो आपको चरित्र प्रमाणपत्र की आवश्यकता होती है। किसी पेशा को अख्तियार करने के लिए भी बहुधा आपको चरित्र प्रमाणपत्र चाहिए। परन्तु क्या विवाह करने के लिए आप कोई चरित्र प्रमाणपत्र प्रस्तुत करते हैं? दुर्भाग्यवश बहुत से लोग इस पक्ष को ज्यादा महत्व नहीं देते, जोकि जीवन साथी के चुनाव में बहुत महत्वपूर्ण कसौटी है। यदि आपके जीवन साथी में अन्य सभी शारीरिक गुण, आर्थिक व सामाजिक स्तर और शिक्षा है परन्तु उसका चरित्र संतोषपूर्ण नहीं है तो आपका वैवाहिक जीवन वास्तव में नरक होगा। इसके विपरीत यदि आयु, जाति, धर्म, शिक्षा आदि में अंतर है परन्तु चरित्र अच्छा है तो भी विवाह चल जाएगा।

वैवाहिक जीवन में चरित्र का अर्थ है सदिच्छा मान सम्मान, विनोदप्रियता, प्रेम करने की योग्यता, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, दूसरों की चिंता करना, लेने और देने की भावना, प्रसन्नचित्त, अनुशासन, भगवान में विश्वास, खुलापन, जीवन के मूल्य आदि। दंपति के सम्मुख साथ बिताने के लिए पूरा जीवन होता है। उनकी अधिकतर खुशियाँ आपस में बाँटने, सहमति और साथ काम करने पर निर्भर होती हैं। उनमें समानताओं का विद्यमान होना ही जीवन का मूल आधार है। इसमें कोई शक नहीं है कि कुछ भिन्नताएँ जीवन साथी को समृद्ध बनाने में सहायक होती हैं। परन्तु फिर भी जिस व्यक्ति में ज्यादा समानताएँ होती हैं वह उत्तम साथी माना जाएगा।

मनोविज्ञान के अनुसार एक व्यक्ति के चरित्र का निर्माण उसके जीवन के प्रारंभिक वर्षों में हो जाता है। अतः उसके चरित्र निर्माण में उसका परिवार उत्तरदायी होता है। जिस व्यक्ति से हमारे निजी संबंध नहीं है उसके परिपक्व होने पर उसके चरित्र के बारे में पता करना बेहद मुश्किल है। जीवन साथी के चुनाव में हमेशा यह संभव नहीं होता। उसके चरित्र का अनुमान लगाने के लिए उसका पारिवारिक संबंध और पारिवारिक जीवन महत्वपूर्ण स्रोत बन सकते हैं। असुरक्षित, नाखुश व बिखरे परिवारों में बड़े हुए बच्चे में कई व्यक्तित्व दोष व विचित्र व्यवहार पद्धतियाँ होती हैं।

कुछ अभिभावक अपने बच्चों में विशेषकर बेटों की व्यावहारिक परेशानियों का हल विवाह समझते हैं। एक शराबी अथवा एक मादक द्रव्य लेने वाला अथवा एक अपराधी एक निम्न आर्थिक सामाजिक स्तर की गरीब लड़की से विवाह कर सकता है। उसी गरीब लड़की को बिगड़े हुए बेटे को बदलना होता है। अक्सर इसका अंत विवाह टूटने और लड़की के लिए दुःखों का होता है। बेचारी बेकसूर लड़की बलि का बकरा बन जाती है।

जाति और धर्म

जब दूल्हे या दुल्हन का चयन माता-पिता द्वारा किया जाता है तब वे धर्म या जाति पर बहुत जोर देते हैं। परन्तु जब ये चयन युवा स्वयं करते हैं तो बहुत अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक विवाह होते हैं। उनमें से बहुत से सफल होते हैं। इस तरह के विवाह विभिन्न जातियों और धर्मों में राष्ट्रीय व सामाजिक एकता और सद्भावना के लिए बहुत अच्छे होते हैं। लेकिन इन विवाहों में कई व्यावहारिक और सामंजस्य की समस्याएँ होती हैं। भारत में दो परिवारों के बीच विवाह होता है। परिवार इस तरह के विवाह को स्वीकार नहीं भी कर सकते हैं और एक दूसरे के रीति-रिवाज़ों में दखल देते हैं।

जब दो भिन्न धर्मों व जातियों के दो लोग आपस में विवाह करते हैं तो उन्हें एक दूसरे के विश्वास और मूल्यों को स्वीकार एवं उनका आदर करना चाहिए। अक्सर बच्चे के जन्म के साथ परेशानियाँ शुरू होती हैं। माता-पिता दोनों ही जाने अनजाने अपनी अपनी परम्पराएँ और मूल्य अपनाने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप बच्चे को लेकर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यदि माता-पिता दोनों धर्म निरपेक्ष हैं तो इस तरह की समस्याओं को कुछ हद तक रोका जा सकता है।

इसलिए यह माना जाता है कि समान धर्म, जाति और संस्कृति से जीवन साथी का चुनाव अधिक सुरक्षित है। विकसित देशों में भी जहाँ जीवन साथी का चुनाव लड़के-लड़कियां स्वयं करते हैं; समान जाति, धर्म और संस्कृति को वरीयता दी जाती है।

सामाजिक और आर्थिक स्तर

जहाँ तक संभव हो पति-पत्नी दोनों को समान आर्थिक और सामाजिक स्तर का होना चाहिए। परिवार को चलाने के लिए निश्चित आय होनी चाहिए। आज भारत में दहेज एक सामाजिक समस्या बन गई है। पुरुष पत्नी के घर से बड़ी रकम की माँग कर रहा है। दहेज समस्या के कारण बहुत सी दुल्हनें जलाई जाती है। बेशक पिता की संपत्ति पर पुत्री का बराबर का हिस्सा होना चाहिए। अक्सर यह हिस्सा विवाह के समय वर को सौंप दिया जाता है। बहुत से मामलों में पत्नी का पैसे पर कोई हक नहीं होता और उसे परिवार और पति की संपत्ति समझा जाता है। बहुत से विवाहों में दुल्हन के चयन का आधार दहेज होता है। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है।

परिवार बनाने और चलाने के लिए दम्पत्ति को आर्थिक रूप से व्यवस्थित होने चाहिए। परन्तु पत्नी के परिवार से पूर्ण आर्थिक मदद की आशा नहीं करनी चाहिए। जहाँ तक हो सके, पत्नी की भी अपनी स्वतंत्र आय होनी चाहिए। एक बहुत निम्न अथवा उच्च आर्थिक

और सामाजिक स्तर के व्यक्ति से विवाह करने में दोनों को ही सामंजस्य करने में कठिनाइयाँ आ सकती है। बहुत से प्रेम विवाहों में आर्थिक असमानता को नहीं देखा जाता जिससे बाद में वैवाहिक समस्याएँ आती हैं। कहा जाता है कि "गरीबी की परिस्थितियों में प्यार का फलना बहुत कठिन है।"

शिक्षा और बुद्धिमता

इन दोनों कारकों में अधिक असमानता नहीं होनी चाहिए। भारतीय गाँवों में अधिकतर महिलाएँ अभी भी अशिक्षित हैं। पुरुष विवाह के लिए शिक्षा को आवश्यक नहीं समझते। यह बहुत ही शोचनीय स्थिति है। बुद्धिमान पतनी और कुशल गृहिणी बनने के लिए महिलाओं को शिक्षित होना चाहिए। एक शिक्षित माँ अपने बच्चे की शिक्षा की उत्तम सुरक्षा है। जिस तरह शारीरिक गठन के मामले में है, भारत में पुरुष अपने समान अथवा अपने से थोड़ा निम्न शिक्षा स्तर का जीवन साथी चाहते हैं। यदि पत्नी अधिक शिक्षित है तो पति में हीन भावना आ सकती है।

पति-पत्नी दोनों को इतना बुद्धिमान होना चाहिए कि वे घर को चला सकें। पति-पत्नी के बीच बौद्धिक सहयोग बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है जिस पर भारतीय विवाहों में अधिक बल नहीं दिया जाता। विक्षिप्त व्यक्ति से विवाह करना उचित नहीं है। बच्चों में बुद्धिमता एक हद तक अपने माता-पिता से विरासत में मिलती है। अतः जीवन साथी के चुनाव में बौद्धिकता बहुत महत्वपूर्ण है।

आचार व्यवहार और मूल्य-जीवन के मूल निर्धारक

आचार व्यवहार और मूल्यों तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बहुत अधिक समानताएँ होनी चाहिए। इनमें लक्ष्य, न्याय के प्रति सामान्य दृष्टिकोण, ईमानदारी, सच्चाई और धार्मिक आस्था आदि शामिल हैं। दूसरे के विश्वास को केवल मानना ही जीवन पर्यन्त संबंध बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है।

पति-पत्नी दोनों को विवाह के विचार, अर्थ और उद्देश्य से पूरी तरह सहमत होना चाहिए। निष्ठा, परिवार में पारस्परिक भूमिकाओं, सेक्स, बच्चों और ससुराल के संबंध में समान धारणा का होना बहुत महत्वपूर्ण है। मनोरंजन, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रियाकलापों तथा धार्मिक और सामाजिक जीवन में भाग लेने जैसे क्षेत्रों में सहज ही सहमति होना अच्छा है।

पति-पत्नी के स्वभाव में समानता विवाहों में समस्या को रोकती है। स्वभाव का अर्थ शारीरिक क्रियाकलापों का स्तर तथा व्यक्ति की प्रतिक्रिया के तरीके से है। एक व्यक्ति विशेष में व्यवहार को नियंत्रण करने वाली ग्रंथियाँ अन्य व्यक्ति से भिन्न हो सकती हैं। इस तरह की जैविक विभिन्नताएँ विवाह में होने वाली बहुत सी समस्याओं के विश्लेषण में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए एक साथी हमेशा क्रियाशील रहता है तो दूसरा निष्क्रिय क्यों रहता है। इन सब समस्याओं से बचने के लिए जीवन साथी के चुनाव में स्वभावगत समानता को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

जीवन साथी के चुनाव के समय ध्यान देने योग्य दूसरा तथ्य है आवश्यकताओं की समानता। इस बात का प्रमाण भी है कि लोग ऐसा जीवन साथी चाहते हैं जो उसकी विशेषताओं और कमियों को पूरा कर सके। पूरक आवश्यकताएँ वाले व्यक्ति ही विवाह की इच्छा रखते हैं। कई लड़के व लड़कियाँ एक दूसरे से इसलिए आकर्षित होते हैं क्योंकि वे एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इस तरह से संतुष्ट आवश्यकताएँ प्रेम की आवश्यकता, लगाव, सहानुभूति और आपसी समझ आदि की आवश्यकता हो सकती है।

अब तक हम जीवन साथी में पाए जाने वाले कुछ विशष गुणों के बारे में पढ़ चुके हैं। जीवन साथी का चुनाव इतनी सरल प्रक्रिया नहीं है। यह एक लम्बी प्रक्रिया है जिसमें समय और अनुभव की आवश्यकता होती है। पति-पत्नी दोनों को एक दूसरे से भली-भाँति परिचित होने का अवसर लेना चाहिए। इसे प्रणय निवेदन कहते हैं। यह दोनों व्यक्तियों को एक-दूसरे की भावनाओं, विचारों और जीवन के मूल तत्वों को जाँचने का अवसर देता है। यह उन्हें यह निर्णय लेने में मदद करता है कि क्या दोनों जीवन भर एक साथ रह सकेंगे। यह उन्हें अपने स्वभाव के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे पर उज़ागर करने के अवसर प्रदान करता है।

प्रणय निवेदन (courtship) के उपर्युक्त लाभों के बावजूद भारतीय विवाहों में सामान्यतः इसे स्वीकार नहीं किया जाता। परन्तु पश्चिमी देशों में ऐसा आवश्यक है। फिर भी विवाह से पूर्व जीवन साथी से कुछ परिचय होना अच्छा है।

कोई भी व्यक्ति ऐसा जीवन साथी नहीं पा सकता जो जीवन साथी के चुनाव के उपर्युक्त सभी मापदंडों को संतुष्ट या पूरा करता हो। किसी न किसी रूप में कुछ समझौते करने ही होते हैं। परन्तु जब एक बार चुनाव हो गया तो उसे अपने जीवन साथी को पूर्णतः स्वीकार करना चाहिए। वैवाहिक जीवन में 'पूर्ण स्वीकार' ही सफलता की कुंजी है। बहुत से लोग अपनी अपेक्षाओं के अनुसार अपने जीवन साथी को बदलने का प्रयास करते हैं। परन्तु यह एक निरर्थक प्रयास है, एक वयस्क व्यक्ति के व्यवहार को बदलना आसान नहीं है। अतः अपने जीवन साथी को उसके गुण-दोषों सहित स्वीकार करना और उसके अनुसार सामंजस्य करना ही उचित मार्ग है।

वैवाहिक संबंध में 'मैं' अथवा 'तुम' नहीं होता केवल 'हम' होता है। पति-पत्नी को एक होना चाहिए तथा साथ ही अपनी निजी पहचान और वैयक्तिकता भी बनाए रखनी चाहिए। विवाह का नया गणित है 1 + 1 = बड़ा 1, यह कभी भी 2 अथवा 11 नहीं होना चाहिए क्योंकि यहाँ जीवन साथी दो समानान्तर रेखाओं पर चलते हैं जो आपस में कभी भी नहीं मिलतीं।

बोध प्रश्न VI

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) जीवन साथी के चुनाव की प्रमुख कसौटी क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.8 सारांश

इस इकाई में आपने विवाह, परिवार और जीवन साथी के चुनाव की कसौटी के बारे में पढ़ा। विवाह स्त्री-पुरुष के मध्य होने वाला जीवन भर का चैतन्य समझौता है। यह एक अनुबंध, एक संबंध और एक संस्था है। विवाह के अनेक जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और वैधानिक पक्ष भी हैं। संबंध, प्रजनन, सहभागिता, यौन क्रिया और व्यक्तिगत सामाजिकता आदि विवाह के प्रमुख कार्य व उद्देश्य हैं।

परिवार समाज की सबसे प्राचीन संस्थाओं में से एक है। जन्म के समय मनुष्य सबसे अधिक असहाय होता है। इसे अपने विकास और वृद्धि के लिए लम्बे समय तक माता-पिता के साथ की आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप परिवार का विकास हुआ। परिवार की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं। यह रक्त संबंधी अथवा गोद लिए व्यक्तियों का समूह होता है। वे एक साथ एक छत के नीचे रहते हैं। परिवार के सभी सदस्य माता, पिता, पति, पत्नी, बच्चों आदि के रूप में एक दूसरे से संबंधित होते हैं। इसकी एक सामान्य संस्कृति भी होती है।

भारत में परिवार पद्धति आज भी दृढ़ और स्थायी हैं। भारत में तीन प्रकार के परिवार हैं। संयुक्त परिवार, एकल परिवार और विस्तारित परिवार। प्रत्येक पद्धति के अपने गुण-दोष हैं।

परिवार के अनेक कार्य हैं। यह बच्चों, बूढ़ों व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह मानव जाति को प्रजनन, शारीरिक सुरक्षा आदि उपलब्ध कराता है। परिवार सभी सदस्यों की शारीरिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह समाज की मूल इकाई है।

विवाह में जीवन साथी का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जीवन भर की वचनबद्धता है। यह चुनाव माता-पिता, स्वयं अथवा दोनों के द्वारा हो सकता है। जीवन साथी में कुछ निश्चित सामाजिक गुण होने आवश्यक हैं। जीवन के हर क्षेत्र में जीवन साथी के बीच अनुकूलता होनी चाहिए। उनमें से कुछ क्षेत्र हैं – परिपक्वता, शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक, चरित्र, जाति व धर्म, आर्थिक स्तर, शिक्षाएँ आचार-व्यवहार और जीवन के मूल तत्व और मूल्य।

1.9 शब्दावली

अनुकूलता : एक साथ रहने की क्षमता - पति-पत्नी में जीवन के हर क्षेत्र में एक दूसरे से सामंजस्य रखने की योग्यता होनी चाहिए।

प्रणय निवेदन : विवाह से पूर्व का वह समय जब लड़का लड़की एक दूसरे का प्यार जीतने की कोशिश करते हैं। पश्चिमी देशों में विवाह से पूर्व भावी दंपति के बीच प्रणय निवेदन काल होता है। इस काल के दौरान वे एक दूसरे को नजदीक से जान सकते हैं।

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अल्फांसे एच. क्लेमेन्सः *मैरिज एंड फैमिली* - प्रेन्टिस हाल एंगेलवुड एन.जे.।

एन्टोनी ए. डिसूजाः *सेक्स एजुकेशन एंड पर्सनेल्टी डेवेलपमेंट* - ऊषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

एन्टोनी ग्रुगनीः *सैक्स एजुकेशन* - बैटर योरसेल्फ बुक्स, मुम्बई।

मेरी मिगनन मॉसकेयंरहेसः *फैमिली लाइफ एजुकेशन/वेल्यू एजुकेशन* - सेवा सदन प्रशिक्षण संस्थान, बंगलौर।

थॉमस ग्रेसियसः *एड्स एंड फैमिली एजुकेशन* - रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।

ए. सूर्याकांतीः *चाइल्ड डेवेलपमेंट* - कविता प्रकाशन, गांधी ग्राम।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) विभिन्न लोगों के लिए विवाह की अवधारणा का भिन्न अर्थ है। विवाह एक संबंध है। यह मानव संबंधों में सबसे गहरा और सबसे संतोषप्रद संबंध है। कुछ लोगों के लिए विवाह एक संस्था है। विवाह का स्त्री-पुरुष के मध्य मुक्त अनुबंध के रूप में वर्णन है। इसका जैविक, सामाजिक, शारीरिक और वैधानिक पक्ष है।

बोध प्रश्न II

1) विवाह के अनेक कार्य और उद्देश्य हैं। प्रजनन और संबंध विवाह के प्रमुख उद्देश्यों में से हैं। यौनक्रिया व सहभागिता के लिए भी विवाह है। यह व्यक्ति को सामाजिक होने में भी मदद करता है। विवाह से परिवार बनता है जिसमें एक व्यक्ति को ऐसा प्राकृतिक वातावरण मिलता है जिससे उसका पूर्ण रूप से विकास हो सकता है।

बोध प्रश्न III

1) धार्मिक पुस्तकों के अनुसार मानव की उत्पत्ति के साथ ही विवाह का प्रारंभ हो गया था। परन्तु हम यह नहीं कह सकते हैं कि मानव जीवन के आरंभ से ही विवाह शुरू हो गया था। ज़मीन, जो उत्पादन करती पर स्वामित्व करने की पुरुष की चाहत से उसके अंदर हर उस चीज़ पर स्वामित्व कायम करने का विचार आया, जो उत्पादन करती है। धीरे-धीरे पुरुष अधिक से अधिक स्त्रियों का स्वामी बनने लगा और अधिक से अधिक बच्चे पैदा करने लगा। इसका अंत संघर्ष में हुआ। धीरे-धीरे स्त्री के स्वामित्व के नियम बने। जिसकी परिणति सामाजिक संस्था विवाह के रूप में हुई।

बोध प्रश्न IV

1) मानव शिशु असहाय पैदा होता है। इसे शारीरिक और मानसिक परिपक्वता प्राप्त करने में वर्षों लग जाते हैं। अतः बच्चे को लम्बे समय तक माता-पिता के साथ की आवश्यकता होती है। इसलिए मानव को अपनी संवृद्धि और विकास के लिए परिवार की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न V

1) समाज में परिवार के बहुत से कार्य हैं जैसे प्रजनन, सांस्कृतिक परम्पराओं को आगे बढ़ाना और शारीरिक सुरक्षा प्रदान करना आदि। परिवार अपने सदस्यों के भावनात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास में मदद करता है। इसके अतिरिक्त परिवार के सामाजिक क्रियाकलाप भी होते हैं।

बोध प्रश्न VI

1) जीवन साथी के बीच परिपक्वता - शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक, बौद्धिक, स्वास्थ्य, व्यावहारिक पद्धतियाँ, धर्म, जाति, आर्थिक स्तर, शिक्षा और बौद्धिकता, आचार-विचार और जीवन के मूल तत्व एवं मूल्यों की अनुकूलता होनी चाहिए। पति-पत्नी के बीच विवाह और परिवार के लक्ष्यों एवं कार्यों के बारे में एक समान धारणा होनी चाहिए।

इकाई 2 भारत में विवाह

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विवाह की संकल्पना

2.3 विवाह के बारे में दृष्टिकोण

2.4 विवाह के प्रकार

2.5 हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और जनजातियों में विवाह के प्रकार

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको विवाह की अवधारणा, एक सामाजिक संस्था के रूप में विवाह तथा विवाह के विभिन्न रूपों के बारे में जानकारी प्रदान करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- विवाह की अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे;
- विवाह के बारे में विभिन्न विचारधाराओं का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- विवाह के विभिन्न प्रकारों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने विवाह के अर्थ और जीवन-साथी के चयन में ध्यान देने वाली बातों के बारे में अध्ययन किया है। इस इकाई में विवाह के संकल्पनात्मक पहलुओं और विभिन्न रूपों की चर्चा की जा रही है।

विवाह की लोकप्रिय अवधारणा यह है कि यह पुरुष और स्त्री का मिलाप है। इसके बारे में दूसरी संकल्पना है कि यह मिलाप की सामाजिक विवाह के बारे में एक अन्य विचार यह है कि यह भूमिकाओं की एक व्यवस्था है और इसमें आरंभिक संबंध स्थापित होते हैं। विवाह के बारे में हिन्दू संकल्पना यह है कि यह एक संस्कार अथवा धर्म है। हिन्दू विवाह के पारम्परिक एवं आधुनिक प्रणालियों का अध्ययन करने के पूर्व इसके समाजशास्त्रीय महत्व के बारे में जानना महत्वपूर्ण है।

विवाह मानवीय संबंधों की एक घनिष्ठतम एवं जटिलतम प्रक्रिया है। यह समाज की नींव का पत्थर है। इसमें सामाजिक वैधता शामिल है, जो सामान्यता नागरिक या धार्मिक अनुष्ठान के रूप में होती है और जो विपरीत लिंग वाले दो व्यक्तियों को यौन क्रियाओं में शामिल होने के लिए अधिकृत करता है।

2.2 विवाह की संकल्पना

पुरुष हो या औरत, प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। निभाई जाने वाली विभिन्न भूमिकाओं में से दो भूमिकाओं का जीवन में बहुत महत्व है। एक है आर्थिक भूमिका तथा दूसरी है वैवाहिक या पारिवारिक भूमिका। आर्थिक भूमिका जीवन की प्रमुख भूमिका है क्योंकि इसके निर्वाह में व्यक्ति के जीवन का अच्छा खासा भाग लग जाता है। माना जाता है कि व्यक्ति अपनी रोजी रोटी 20 से 24 वर्ष की आयु में कमाना आरंभ कर 58 से 62 वर्ष तक की आयु तक कमाता रहता है। इस प्रकार करीब 40 वर्ष तक वह आर्थिक भूमिका का निर्वाह करता है और प्रतिदिन वह 8 से 10 घंटे तक कार्य करता है। इस प्रकार समझा जा सकता है कि व्यक्ति के जीवन में आर्थिक भूमिका कितना अधिक समय ले लेती है।

वैवाहिक भूमिका भी व्यक्ति के जीवन में 40 से 50 वर्ष तक जारी रहती है। लेकिन दोनों भूमिकाओं में से वैवाहिक भूमिका आर्थिक भूमिका से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि आर्थिक भूमिका में द्वितीयक संबंध शामिल होते हैं, जबकि वैवाहिक भूमिका में वैयक्तिक या प्राथमिक संबंध शामिल होते हैं। इसे और अधिक अच्छी तरह समझने के लिए हमें प्राथमिक एवं गौण संबंधों में अंतर देखना होगा।

बुनियादी संबंध अनिवार्यतः असीमित, विशिष्ट, भावनात्मक, स्वार्थ रहित और अनायास होते हैं। परन्तु गौण संबंध प्रतीकात्मक रूप से सीमित, स्तरीय, भावनाहीन व्यावहारिक और समझौतावादी होते हैं। फिर, विवाह में बुनियादी संबंध अन्य बुनियादी समूहों जैसे मित्रता समूह, पड़ोसी समूह, गाँव आदि के बुनियादी संबंधों से भिन्न होते हैं। इसका मतलब यह है कि विवाह में बुनियादी संबंध यौन संबंधों पर आधारित होते हैं और ये यौन संबंध पुरुष और स्त्री के संबंधों में घनिष्ठता एवं दृढ़ता या स्थायित्व स्थापित करते हैं। विवाह में बुनियादी संबंध के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं – एक संतुष्टिकरण की आवश्यकता तथा दूसरा सामाजिक नियंत्रण। यह व्यक्तियों की जैविक (यौन संतुष्टि); मनोवैज्ञानिक (प्यार और अपनत्व), आर्थिक आवश्यकताएँ (रोटी, कपड़ा और मकान) पूरी करता है तथा नैतिकता और सिद्धान्तों के मूलभूत स्रोत के रूप में भी कार्य करता है। जब एक साथी दूसरे के लिए कुछ कार्य करता है तो दूसरों का नैतिक दायित्व हो जाता है कि वह भी अपने साथी का ध्यान रखे या उसकी बात सुने। इस प्रकार कोई भी साथी अधिक समय तक अनैतिक और ग़ैर-जिम्मेदार नहीं रह सकता।

परिवार संकल्पना को समझने का एक और समाजशास्त्रीय तरीका है कि किस प्रकार विवाह नई और विभिन्न भूमिकाओं को शामिल है, जैसे पति, पत्नी, माता, पिता, बेटा, बेटी, भाई, बहन आदि को भूमिकाएँ। व्यक्ति इन भूमिकाओं को निभाने में समर्थ है या नहीं और किस प्रकार इन भूमिकाओं को अच्छी तरह न निभाने के कारण परिवार विघटित हो जाता है। विवाह में महत्वपूर्ण यह है कि कैसे एक व्यक्ति की भूमिका दूसरे व्यक्ति की भूमिका की अपेक्षाओं के अनुरूप है।

समाजशास्त्री कूस के अनुसार, "विवाह विन्यास परिवार तथा प्रजनन परिवार के मध्य एक विभाजक रेखा है जो दोनों स्थितियों में निभाई जाने वाली भूमिका की प्रकृति के अनुसार होती है।" परिवार विन्यास की भूमिका शैशव, बचपन और किशोरावस्था की होती है, जिसमें कोई दायित्व तथा कर्त्तव्य शामिल नहीं होते। लेकिन विवाह के बाद निभाई जाने वाली प्रजनन परिवार की भूमिका पति/पत्नी, माता/पिता रोजी रोटी कमाने वाला, दादा/दादी, सेवानिवृत्त व्यक्ति आदि के रूप में विभिन्न अपेक्षाएँ एवं कर्त्तव्य शामिल होते हैं।

इस प्रकार विवाह एक लघु सामाजिक व्यवस्था है तथा इसमें विघटन न आने देने के लिए संतुलन रखना आवश्यक है। संतुलन में समायोजन आवश्यक है जिसका अर्थ है देना और लेना या पति और पत्नी दोनों के लिए कुछ बलिदान करना। संतुलन रखने के लिए कुछ कार्य प्रत्येक के द्वारा किया जाना अपेक्षित हैं जैसे भोजन पकाना, सफाई करना, रोजी रोटी कमाना, बच्चों की देखभाल करना और इसी तरह के अनेक कार्य, कौन व्यक्ति कौन-सा कार्य करता है यह अर्थ नहीं रखता (यद्यपि समाज पति और पत्नी दोनों से कुछ अलग-अलग अपेक्षाएँ रखता है) महत्वपूर्ण यह है कि विवाह की स्थिरता के लिए किसी न किसी को इन कार्यों को करना चाहिए।

2.3 विवाह के बारे में दृष्टिकोण

इस संस्था के बारे में मानव वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों और धार्मिक पुस्तकों द्वारा विभिन्न विचार प्रकट किए गए हैं।

विवाह एक संस्था है जिसमें पुरुष और स्त्री प्राथमिक रूप से बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन-पोषण करने के उद्देश्य से धनिष्ठ वैयक्तिक संबंध जीने के लिए पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण से विवाह एक ऐसी संस्था है, जो समाज विशेष में समाजीकरण को सुनिश्चित करती है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से यह बच्चे धारण करने, उनका पालन करने में सहायता प्रदान करती है और प्यार पाने एवं उसके विस्तार को नियंत्रित करती है।

एक विचार है कि विवाह यौन संबंधों को सामाजिक वैधता है जो सार्वजनिक घोषणा के साथ आंरभ होती है जिसमें स्थायित्व का भाव होता है। यह कमोबेश विवाह संविदा मानी जाती है जो पति-पत्नी और उनके बच्चों के बीच परस्पर अधिकार और कर्त्तव्यों को निर्धारित करती है।

विवाह के बारे में भारतीय दृष्टिकोण

ऊपर वर्णित विचार विवाह के बारे में पश्चिमी विचार हैं। अब हम विवाह के बारे में भारतीय विशेषज्ञों के विचारों का वर्णन कर रहे हैं।

विवाह को दुल्हन के पिता या उसके अन्य उपयुक्त संबंधों द्वारा दूल्हे को दिया जाने वाला एक आयोजनपूर्ण उपहार समझा गया है और समझा जाता है कि मानव के अस्तित्व को कायम रखने के लिए दोनों अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करें। ये कर्त्तव्य हैं धर्म, अर्थ और काम। धर्म नैतिक मूल्यों पर आधारित धार्मिक कर्त्तव्य है जिससे मोक्ष या उद्धार प्राप्त हो। अर्थ से अभिप्राय हैः जीवन का आर्थिक पक्ष तथा काम का अर्थ है वर-वधू के शारीरिक या लैंगिक कर्त्तव्य ताकि बच्चे उत्पन्न हों और मानव जाति को जीवित रखा जाए। विवाह मनोरंजन के लिए नहीं अपितु प्रजाति को जीवित रखने के लिए होता है। यह विवाह के बारे में भारतीय विचारधारा है। यह परिवार एवं समुदाय के प्रति एक सामाजिक कर्त्तव्य है।

भारतीय धार्मिक ग्रंथ विवाह को एक धार्मिक अनुष्ठान मानते हैं, जिसे मुख्यतः एक जटिल बंधन माना जाता है जो एक ओर तो धार्मिक और नैतिक तथा दूसरी ओर सामाजिक तथा आर्थिक होता है।

विवाह के बारे में हिंदू अवधारणा है कि यह करार नहीं, बल्कि एक संस्कार (परम्परा) और धार्मिक अनुष्ठान है। यह दो व्यक्तियों का सामान्य मेल नहीं है बल्कि आत्माओं का पवित्र गठबंधन है। यह बंधन केवल मृत्यु द्वारा ही तोड़ा जा सकता है।

दूसरी तरफ इस्लाम का मत है कि विवाह एक संस्था है जिसे समाज की रक्षा के लिए नियत किया गया है ताकि मानव अपवित्रता और व्याभिचार से अपनी रक्षा कर सके। विवाह एक धार्मिक संस्कार नहीं अपितु एक सिविल करार है जिसका उद्देश्य पारिवारिक जीवन को बढ़ावा देना तथा बच्चों को वैधता प्रदान करना है।

ईसाई धर्म में भी विवाह को एक पुरुष और स्त्री के मिलन के रूप में देखा गया है जिसमें अन्य लोग शामिल नहीं हैं। यह एक प्रकार का एकगामी विवाह है।

उपर्युक्त विचारों के निष्कर्ष में शायद आपने जाना हो कि विवाह दो विपरीत लिंगीय व्यक्तियों का जीवन पर्यन्त लैंगिक गुणों का पारस्परिक आदान-प्रदान है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जैविक, भावात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना और उनका विकास करना है जो अकेले रह कर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

संस्कार के रूप में हिंदू विवाह

विवाह के बारे में हिन्दू सोच यह है कि यह धर्म का अनुपालन और आनंद (काम) की ज़रूरत को पूरा करता है। विवाह को संस्कार समझने के अनेक निम्न कारण हैं:

1) धर्म (धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करने) विवाह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।
2) कतिपय पवित्र सूत्रों पर आधारित धार्मिक संस्कारों जैसे कन्यादान, पाणिग्रहण संस्कार, सतपदी आदि को पूरा करना।
3) ये अनुष्ठान पंडित द्वारा अग्नि (सबसे पवित्र देवता) के सम्मुख वेद (सर्वाधिक पवित्र ग्रंथ) मंत्रोच्चार (अनुच्छेदों) द्वारा पूरे किए जाते हैं।
4) यह संबंध अपरिवर्तनीय और चिरस्थाई माना जाता है। पति-पत्नी न केवल मृत्यु तक अपितु मृत्यु के बाद भी एक दूसरे से बंधे रहते हैं।
5) यद्यपि पुरुष अपने जीवन काल में अनेक संस्कार कर सकता है लेकिन स्त्री अपने संपूर्ण जीवन काल में एक ही संस्कार – विवाह संस्कार करती है। अतः यह उसके लिए अति महत्वपूर्ण होता है।
6) स्त्री की निष्ठा पर तथा पुरुष की वफादारी पर जोर दिया जाता है।
7) विवाह को परिवार और समुदाय के प्रति एक सामाजिक कर्त्तव्य समझा जाता है। इसमें वैयक्तिक स्वार्थ और आकांक्षा का कोई विचार नहीं होता।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह के बारे में भारतीय विचारधारा क्या है?

.....

.....

.....

.....

2) विवाह के बारे में भारतीय विचारधारा क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 विवाह के प्रकार

अभी तक आपने विवाह की संकल्पना, अर्थ तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में पढ़ा है। अब आप विवाह के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करेंगे। विवाह के मूल रूप के बारे में भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ सिद्धान्तकारों के अनुसार आदि मानव सामुदायिक विवाह की स्थिति में रहते थे। इसमें समूह या कबीले के पुरुष बिना किसी भेदभाव के समूह की स्त्रियों को प्राप्त करते थे तथा इस प्रकार उत्पन्न बच्चे समूह के बच्चे समझे जाते थे।

कुछ अन्य समाजशास्त्री एक गामी विवाह (मोनोगैमी) को विवाह का मूल स्वरूप मानते हैं।

विवाह का मूल रूप चाहे जैसा भी रहा हो आज एक गामी विवाह ही सर्वाधिक प्रचलित है। लेकिन बहु पत्नीत्व विवाह, बहुपतित्व तथा नियोग स्वरूप भी पाए जाते हैं।

एकल गामी विवाह (मोनोगैमी)

अधिकांश सभ्यताओं में एक गामी विवाह ही विवाह का वैध रूप है। पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है। इसी विवाह से बच्चे पैदा करता है तथा अपनी पत्नी के साथ सभी अनुष्ठान पूरे करता है। एक गामी विवाह का लंबा इतिहास है। प्राचीन काल से हिन्दू एक गामी विवाह को विवाह का सबसे आदर्श रूप मानते हैं।

बहु-पत्नीत्व विवाह (पालीगैमी)

इसमें एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करता है। इसे बहु पत्नी विवाह भी कहा जाता है। बहु-पत्नी विवाह प्रतिबंधित, अप्रतिबंधित तथा सशर्त हो सकता है। प्राचीन हिन्दू सभ्यता में सशर्त बहु पत्नीत्व विवाह प्रथा प्रचलित थी। धर्मशास्त्रों के अनुसार एक पुरुष पत्नी के बांझ होने पर अपने विवाह के 10 वर्ष बाद या पत्नी से केवल कन्या पैदा होने पर लड़के की अभिलाषा में 13, 14 वर्ष बाद पुनःविवाह कर सकता था।

मनु ने कहा है कि पुरुष अपने प्रथम विवाह के 8 वर्ष बाद पुनः विवाह कर सकता है यदि उसकी पत्नी बांझ है। यदि उसके बच्चे जीवित नहीं रहते तो 10 वर्ष बाद, यदि उसकी पत्नी लड़कियों को ही जन्म देती हो तो 11 वर्ष बाद और यदि उसकी पत्नी झगड़ालू, विद्रोही या कठोर है तो अपने विवाह के तुरंत बाद पुनःविवाह कर सकता है। महाभारत में कहा है कि बिना किसी उचित कारण के यदि पुरुष दो बार विवाह करता है तो वह पाप करता है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है।

आज बहु पत्नी विवाह कानूनी रूप से प्रतिबंधित है। कानूनी प्रतिबंध के अलावा भी लोग निम्नलिखित कारणों से बहु पत्नी विवाह नहीं करतेः

1) उच्च जीवन स्तर बनाए रखने के लिए घर में एक से अधिक पत्नी रखना संभव नहीं है।

2) अधिक पत्नियों से घर में तनाव रहता है।

3) आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बाद स्त्री पुरुष का आधिपत्य स्वीकार नहीं करती।

बहुपतित्व (पालीऐन्ड्री)

इसमें एक स्त्री कई पुरुषों से विवाह करती है। यह प्रथा मालाबार तट के तोड़ा जाति या दक्षिण भारत में नीलगिरी के कोटास जातियों में पाई जाती है। भारत में दो प्रकार की बहुपतित्व प्रथा प्रचलित है तथा यहाँ तक भ्रातृत्व व दूसरी ग़ैर भ्रातृत्व में सभी पति भाई होते हैं या फिर पितृ पक्ष के चचेरे भाई। ग़ैर भ्रातृत्व में पतियों में कोई संबंध नहीं होता जैसे कि केरल के नायर में। उन्नीसवीं शताब्दी में केरल के नायर हिंदुओं में बहु पतित्व प्रथा प्रचलित थी। लेकिन समाजशास्त्री वेस्टरमर्क ने इन विवाहों का उल्लेख करते हुए कहा कि नायरों में इन वैवाहिक बंधनों को विवाह कहना कठिन है, क्योंकि पुरुष साथी कभी महिला के साथ नहीं रहते थे और इस प्रकार पितृत्व के कर्त्तव्यों की उपेक्षा होती थी। 1896 में मालाबार विवाह अधिनियम पारित किया गया जिसने नायरों में विवाह संबंधी नियमों को स्थायी बनाया।

प्राचीन साहित्य में एकमात्र उदाहरण महाभारत में द्रोपदी का पाँच पांडवों के साथ विवाह करने का है, जिसे युधिष्ठिर ने इस आधार पर न्यायोचित बताया कि इसी प्रकार के विवाह उसके पूर्वजों ने किए थे तथा माता के आदेश के रूप में उसका वर्णन किया। माता के आदेश का पालन करना पुत्र का धर्म होता है। महाभारत में बहुपतित्व का उल्लेख करते हुए कहा जाता है कि पुरुष के लिए अनेक पत्नियाँ रखना पुरुष के लिए धर्म नहीं है लेकिन प्रथम पति के लिए कर्त्तव्य की उपेक्षा करना महिला के लिए बड़ा अधर्म होगा।

नियोग (लेविरेट)

नियोग विवाह का वह रूप है जिसमें पति की मृत्यु के बाद महिला पति के छोटे भाई की पत्नी बन जाती है या बड़े भाई के जीवित रहते हुए भी छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी के साथ यौन संबंध स्थापित करने का अधिकार रखता है। यह रूप हरियाणा के अहीरों, जाटों, गूजरों तथा उत्तर प्रदेश की अनेक जातियों में प्रचलित है।

बहु-बहन विवाह (सौरोरेट)

इस विवाह में एक व्यक्ति की कई पत्नियाँ हो सकती हैं जो आपस में बहन होती हैं। सौरोरेट शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा सौरोर – बहन शब्द से हुई है। इसमें कई बहनें बारी-बारी से या एक साथ ही एक व्यक्ति की पत्नियाँ बन सकती हैं। यह सामान्यतः नागा, गोंड और बैगा आदि भारतीय जनजातियों में पाई जाती है, जो दुल्हन की ऊँची कीमतें अदा करते हैं। यह देखा गया है कि यदि बाँझ पत्नी की मृत्यु हो जाए तो इसकी भरपाई के लिए उसकी छोटी बहन पति को भेंट कर दी जाती है।

2.5 हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और जनजातियों में विवाह के प्रकार

महाभारत में विवाह के चार विशेष रूपों का वर्णन किया गया है। ये हैं ब्राह्म, गांधर्व, आसुर तथा राक्षस।

गौतम तथा अस्वलायन, जो हिन्दुओं के प्राचीन विधि निर्माता हैं, ने विवाह के विभिन्न आठ रूपों का वर्णन किया है। ये हैं – ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच। इनमें से चार को उपयुक्त तथा (धर्म) वांछित माना गया है जिन्हें पिता/परिवार की स्वीकृति मिलती है।

दूसरे चार को अव्यावहारिक (अधर्म) माना गया है जिन्हें पिता की अनुमति नहीं मिलती। स्मृतियों द्वारा उचित माने गए विवाह हैंः ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य। जबकि चार अवांछित विवाह थे आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच।

ब्राह्म

विवाह के इस रूप में सुसज्जित लड़की अर्थात् वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त लड़की को पवित्र ग्रंथों में वर्णित संस्कारों को पूरा करने के बाद समान वर्ग के पुरुष को सौंपी जाती थी। दूल्हा प्रायः चरित्रवान और विद्वान होता था जिसका चयन दुल्हन के पिता द्वारा या उसकी सहमति से की जाती थी।

दैव

विवाह के इस रूप में लड़की का पिता संस्कार कराने वाले यज्ञ पुरोहित को उसके शुल्क के रूप में लड़की देता था। लड़की को शुल्क के रूप में आभूषणों आदि से सजाया जाता था।

आर्ष

विवाह का यह रूप दहेज की अपेक्षा वस्तु विनियम प्रथा पर आधारित थी जिसमें दूल्हे के द्वारा लड़की के पिता को लड़की के बदले दो या चार पशु दिए जाते थे।

प्राजापत्य

विवाह के इस रूप में दूल्हे की पूजा की जाती है तथा बड़े सम्मान व आर्शीवाद के साथ दुल्हन के साथ विवाह किया जाता है और कहा जाता है कि, "आप दोनों गृहस्थी के कर्त्तव्यों को पूरा करें।"

आसुर

विवाह के इस रूप में दूल्हे द्वारा दुल्हन का मूल्य उसके पिता को चुकाया जाता है। यह एक प्रकार का आर्थिक करार है। चुकाए गए मूल्य की कोई सीमा नहीं होती।

गांधर्व

विवाह के इस रूप में लड़का व लड़की में प्यार होने पर लड़की की पुरुष के साथ एकांत में संबंध बनाने की इच्छा पर निर्भर करता है। इसमें अभिभावकों की सहमति और दहेज या अनुष्ठान करना ज़रूरी नहीं होता। केवल विवाह करने वालों की इच्छा का ही महत्व है। माना जाता है कि इस प्रकार का विवाह केवल इच्छा से होता है तथा यौन आनन्द प्राप्त करना ही उसका मुख्य उद्देश्य होता है।

राक्षस

विवाह के इस रूप में लड़की का पुरुष द्वारा बलात् अपहरण कर लिया जाता है। यदि लड़की सहायता के लिए शोर मचाती है तथा उसके संबंधी उसे बचाने के लिए आते हैं तो उन्हें मार दिया जाता है।

पैशाच

विवाह के इस रूप में विवाह प्रलोभन, चोरी या धोखे से किया जाता था। जब लड़की नींद में हो, नशे में हो या अचेतन हो या अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो तो उस समय उसके साथ यौनाचार किया जाता था।

विवाह के इन आठ प्रकारों में से ब्रह्म विवाह श्रेष्ठ माना जाता है, जिसमें उसी जाति या समान हैसियत वाले योग्य लड़के को लड़की सौंपी जाती है।

महाभारत काल में दो विवाह रूप - ब्रह्म और गांधर्व सर्वाधिक प्रचलित थे। गांधर्व विवाह क्षत्रिय के लिए उपयुक्त माना गया था। महाभारत के बहुत से वीरों ने इस तरह के विवाह किए थे; जैसे अर्जुन ने उलूपी और चित्रगंधा से विवाह किया तथा दुष्यंत ने शकुंतला से।

स्वयंवर

यह राक्षसी विवाह का ही एक अलग रूप था, जो राजघरानों में प्रचलित था। उदाहरण के लिए अर्जुन ने द्रोपदी को तथा नल ने दमयंती को जीता।

एक ही जाति में विवाह करना स्मृति और पुराण काल के दौरान भी प्रचलित था। विवाह जाति प्रथा और जाति नियमों से संचालित होता था।

वास्तव में एक उच्च जाति का पुरुष निम्न जाति की लड़की से विवाह कर सकता था जिसे अनुलोम विवाह कहा जाता है। लेकिन उच्च जाति की लड़की का निम्न जाति के लड़के से विवाह करने जिसे प्रतिलोम विवाह कहा जाता है, की अनुमति नहीं थी।

विवाह से संबंधित एक और परम्परा थी सगोत्रता नियम। सपिंड, गोत्र तथा परवाश संबंध के स्तर हैं। इनका उद्देश्य कुछ वंश परिवारों और गोत्रों में विवाह को रोकना है।

हिन्दुओं में वर्तमान प्रथा यह है कि एक ही गोत्र में विवाह करने से बचा जाए।

सजातीयता

सजातीयता एक सामाजिक परम्परा है जिसमें व्यक्ति के लिए कुछ खास समूहों में से अपने जीवन साथी का चयन करना आवश्यक होता है। ये सजातीय समूह ही वर्ण, जाति और उपजाति के रूप में वर्णित किए जाते हैं। इस प्रकार किसी जाति विशेष का लड़का उसी जाति की लड़की से विवाह करता है। प्राचीन समाजों में सजातीयता कई कारणों से प्रचलित थी।

1) इससे वैवाहिक समायोजन आसानी से हो जाते थे।
2) इससे जाति के पेशागत रहस्य बने रहते थे।
3) इससे जाति की एकता बनी रहती थी।
4) इससे जातियों की सदस्यता या शक्ति में कमी नहीं हो पाती थी। सबसे अधिक जटिल सजातीयता नियम कबीले, जाति, धर्म और सामाजिक वर्ग द्वारा लागू किए जाते हैं।

विवाह करने वाले हिन्दू जोड़े का एक ही जाति और उपजाति का होना अनिवार्य है। उपजाति का अर्थ ही जातियों का आगे सजातीय श्रेणियों में उप-विभाजन जो व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र जातियाँ हैं। जातीय समानता के कुछ नुकसान भी हैं।

1) इससे अंतर्जातीय तनाव पैदा होता है जिससे देश की राजनीतिक एकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

2) वैवाहिक समायोजन की समस्या रहती है क्योंकि चयन का क्षेत्र सीमित रहता है।

3) बाल विवाह और दहेज समस्याएँ बनी रहती हैं।

विजातीय विवाह

विजातीय शब्द अनिवार्यतः रक्त संबंधियों के बीच वर्जित यौन संबंध के अंतर्गत आता है, जो सार्वभौमिक रूप से निषिद्ध हैं। इसी प्रकार भाई-बहन का विवाह सार्वभौमिक रूप से प्रतिबंधित है। इस वर्जना का विचित्र अपवाद प्राचीन मिश्र के शाही परिवारों, हवाई और पेरु के इंका जातियों में प्रचलित था। इसके पीछे तर्क है कि जिन सथ्यताओं ने बाहरी राजघरानों के साथ अन्तर्वैवाहिक संबंध विकसित नहीं किए थे, वे अपने शाही वंश परंपरा को कायम रखने के लिए प्रतिबद्ध थे।

नजदीकी रक्त संबंधियों में विवाह सभी लोगों के लिए सभी स्थान और सभी काल में निषेध रहा है। प्रायः प्रथम चचेरे भाई-बहन विवाह नहीं करते। विजातीय विवाह नियमों में गठबंधन, विवाह संबंध तथा रक्त संबंधों को शामिल किया गया है। कुछ लोगों में एक ही गाँव या क्षेत्रीय समूह में विवाह पर रोक अथवा कम से कम निरुत्साहित अवश्य किया जाता है।

विजातीयता एक सामाजिक प्रथा है जो कुछ समूहों में जीवन साथी के चयन को वर्जित करती है। हिन्दुओं में दो प्रकार की विजातीयता की प्रथा है। ये हैं गोत्र विजातीयता और सपिंड विजातीयता। इनका उद्देश्य कुछ संबंधों और गोत्रों के बीच विवाह को रोकना है।

गोत्र विजातीयता

गोत्र एक समूह है जिसके सदस्यों के बारे में माना जाता है कि वे किसी एक पौराणिक वंश के वंशज हैं। आरंभ में केवल आठ गोत्र थे लेकिन धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़कर हजारों हो गई। गोत्र विजातीयता एक ही गोत्र के सदस्यों के बीच विवाह का निषेध करती है।

सपिंड विजातीयता

सपिंड का अर्थ है वह व्यक्ति जो एक ही शरीर का कुछ अंश वहन करता है। सपिंड संबंध एक ही पूर्वज से धारित कुछ अंशों के माध्यम से जुड़ने के कारण बनते हैं। ऐसे व्यक्तियों के बीच विवाह वर्जित है। चूँकि रक्त संबंधों की कोई सीमा नहीं है इसलिए पिता और माता पक्ष की कुछ पीढ़ियों में एक दूसरे से संबंधित व्यक्तियों के मध्य विवाह को रोकने के लिए कुछ सीमाएँ निर्धारित की गई हैं। व्यावहारिक एवं कानूनन पितृ पक्ष की पाँच पीढ़ियाँ तथा मातृ पक्ष की तीन पीढ़ियाँ टाली जाती हैं। फिर भी सपिंड विजातीयता का उल्लंघन करने पर कभी किसी को सजा नहीं दी गई यद्यपि गोत्र विजातीयता का उल्लंघन करना घृणित व्यवहार समझा जाता था।

चचेरे भाई-बहनों के मध्य विवाह

चचेरे संबंध चार प्रकार के होते हैं:

1) चचेरा (पिता के भाई का पुत्र/पुत्री)

2) ममेरा (माता के भाई का पुत्र/पुत्री)

3) फुफेरा (पिता की बहन का पुत्र/पुत्री)

4) मौसेरा (माता की बहन का पुत्र/पुत्री)

इनमें से चचेरा और मौसेरा भाई-बहन (जहाँ बच्चे के सहोदर अभिभावक समान लिंगीय संबंध वाले हैं) को पैरेलल भाई-बहन कहा जाता है।

इनमें से ममेरा और फुफेरा भाई-बहन (जहाँ बच्चे के सहोदर अभिभावक विपरीत लिंगीय संबंध वाले हैं) को क्रॉस भाई-बहन कहा जाता है।

इन दो प्रकार के भाई-बहनों में से क्रॉस भाई-बहन के बीच विवाह प्राचीन हिन्दू सभ्यता में प्रचलित थे। आज भी क्रॉस भाई-बहनों के बीच विवाह हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित हैं।

भाई-बहनों के मध्य विवाह के पक्ष और विपक्ष में दिए जाने वाले तर्क जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक हैं। इसके विपक्ष में तर्क हैं:

1) इससे परिवार में जैविक विकृति होगी क्योंकि आनुवांशिक विकृतियाँ उनके बच्चों में भी प्रेषित हो जाएँगी।

2) इससे परिवार में मुख्य संबंधियों के बीच गुप्त संबंध स्थापित होंगे जिससे अनैतिकता को बढ़ावा मिलेगा।

3) यह हमारे धार्मिक नियमों के विपरीत होगा।

भाई-बहन के बीच विवाह के पक्ष में तर्क इस प्रकार हैं:

1) विवाह की संपत्ति परिवार में ही रहेगी।

2) भाई और बहन के बीच प्यार का बंधन और मज़बूत होगा।

3) संयुक्त परिवार विघटन से भाई-बहन अधिक समय तक एक ही मकान में इकट्ठे नहीं रह पाते।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाह

वास्तव में उच्च जाति का पुरुष निम्न जाति की स्त्री से विवाह कर सकता था। इसे अनुलोम (हाइपरगैमी) विवाह कहा जाता है। लेकिन एक उच्च जाति की स्त्री निम्न जाति के पुरुष से विवाह करती है तो इसे प्रतिलोम (हाइपोगैमी) विवाह कहा जाता है जिसकी अनुमति नहीं है।

अंतर्जातीय विवाह

भिन्न जातियों के पुरुष और स्त्री के बीच विवाह अंतर्जातीय विवाह कहलाता है। भारत में अंतर्जातीय विवाह का अर्थ प्रायः न केवल उच्च जाति की उपजातियों (जैसा कि ब्राह्मण जातियों में होता है) में होने वाले विवाह से है अपितु दो प्रमुख भिन्न जातियों (जैसा कि ब्राह्मण और वैश्य या अन्य जातियों में होता है) के बीच होने वाले विवाह से लिया जाता है।

अंतर्जातीय विवाह जो अब भारत में आम होते जा रहे हैं, विशेषतः शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में, न केवल उच्च और निम्न जाति के लोगों में होते हैं अपितु व्यापक जाति समूह में विभिन्न उपजातियों में भी हो रहे हैं (जैसा कि ब्राह्मण उपजाति में)। वर्तमान में भारत में आधुनिक एवं उदार विचारों वाले लोग विश्वास करते हैं कि लोगों/समाज द्वारा अंतर्जातीय विवाहों को स्वीकार कर लेना चाहिए (कानूनन ऐसे विवाहों की अनुमति है)। उनका यह भी विश्वास है कि इससे पारम्परिक जाति प्रथा और अछूत प्रथा को समाप्त करने में भी सहायता मिलेगी।

पहले जाति से बाहर विवाह के बारे में सोचा भी नहीं जाता था। आज बहुत से पुरुष और महिलाएँ यदि उनमें परस्पर प्यार और आकर्षण है तो जाति बंधन को तोड़ने के लिए तैयार हैं।

फिर भी अंतर्जातीय विवाह पर किए गए अध्ययनों से तीन विशेषताएँ प्रकट होती हैंः

1) जब कोई जाति से बाहर का व्यक्ति अमीर है और सामाजिक हैसियत रखता है तो प्रायः ऐसा अंतर्जातीय विवाह स्वीकार कर लिया जाता है।

2) उच्च शिक्षित व्यक्ति जो कुछ परिपक्व भी हैं अंतर्जातीय विवाह करते हैं।

3) आज भी अधिकांश विवाह सजातीय ही होते हैं तथा इनका चयन अभिभावकों द्वारा किया जाता है। केवल एक महत्वपूर्ण परिवर्तन उप जातियों के विरुद्ध बंधनों के संदर्भ में हुआ है, जो कम से कम शहरी क्षेत्रों के शिक्षित व्यक्तियों में व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया है।

आयोजित विवाह वे विवाह हैं जिनमें दूल्हा व दुल्हन के अभिभावक समाज और धर्म के सभी नियमों पर विचार करते हुए विवाह की व्यवस्था करते हैं।

अंतर धर्म विवाह

भारत में अंतर धर्म विवाह का अर्थ मूलतः भिन्न धर्मों के लोगों के बीच होने वाले विवाह से लिया जाता है।

हिन्दू विवाह पर कानूनों का प्रभाव

समय के साथ-साथ हिन्दू विवाह से संबंधित कई मान्यताएँ, मूल्य और आदर्श अपना वास्तविक अर्थ और उद्देश्य खो चुके हैं। लोगों ने कुछ कुप्रथाओं जैसे बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध आदि पर प्रश्न उठाए। परिणामस्वरूप अंग्रेजों के शासनकाल में और स्वतंत्रता के बाद भी कई कानून बनाए गए। उनमें से कुछ थेः सती प्रथा निषेधक कानून (1829), हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), विवाह अधिनियम (1872), बाल विवाह निषेधक अधिनियम (1929) और इसका संशोधन 1978 में, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 और दहेज प्रतिरोधक कानून (1961) और उसका 1986 में संशोधन।

ऊपर उल्लेखित कानूनों की वजह से हिन्दू विवाह प्रथा में काफी परिवर्तन हुए हैं। हिन्दू विवाह संस्था पर इन कानूनों के कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव हैंः

1) तलाक अब सामाजिक और कानूनी रूप से मान्य है। वैवाहिक संबंध अब अटूट नहीं रहे।

2) विधवा पुनर्विवाह और तलाक जैसे प्रावधानों ने पतिव्रता के आदर्श को प्रभावित किया है।

3) विवाह अब एक धार्मिक कर्त्तव्य नहीं है, अब यह जीवनभर के साथ के लिए किया जाता है।

मुसलमानों में विवाह

मुसलमानों में विवाह सार्वभौमिक और बाध्यकारी है। चूँकि मुसलमान समुदाय में ब्रह्मचर्य को हतोत्साहित किया जाता है, अतः विवाह करना आवश्यक है। यह सत्य है कि मुसलमानों में विवाह एक सामाजिक समझौता है क्योंकि यह बच्चों की उत्पत्ति और यौन संबंधों को कानूनी मान्यता प्रदान करता है। यह एक धार्मिक कर्त्तव्य भी है। इसे 'इबादत'

मानते हैं। मुसलमान विवाह के लक्षण हैंः विवाह के प्रस्ताव को दुल्हन द्वारा स्वीकार किया जाना; दूल्हे को विवाह संविदा के योग्य होना; अधिक महत्व (वरीयता) देने की प्रथा अर्थात् समानान्तर भाई-बहनों (पिता के भाई के बच्चों) और क्रॉस भाई-बहनों (माँ के भाई के बच्चों) को अधिक वरीयता दी जाती है; और यदि कानूनी अड़चनें नहीं हैं तो यह विवाह मान्य होता है।

उल्लेखनीय है कि तलाक के प्रावधान को लेकर पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। महिलाओं का हमेशा शोषण होता रहा है। फिर भी औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण और आधुनिक शिक्षा के प्रसार से इसमें बहुत अधिक परिवर्तन हुए हैं। छोटे परिवारों का विस्तार और तलाक की कम घटनाएँ मुसलमान विवाह संस्था पर सामाजिक परिवर्तन के कुछ प्रभाव है।

ईसाइयों में विवाह

ईसाई समुदाय के दो प्रमुख विभाजन हैः कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट। कैथोलिक पोप के प्रति वफादार होते हैं। पोप कैथोलिक चर्च का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है। कैथोलिक चर्च के सभी शिक्षाओं को पोप की सहमति होती है। प्रोटेस्टेन्टों के कई समूह होते हैं। प्रत्येक समूह में क्रमिक व्यवस्था सीमित ही होती है। कैथोलिक चर्च की मान्यतानुसार विवाह एक धार्मिक संस्कार है। इसमें तलाक का कोई प्रावधान नहीं है। फिर भी विवाह अमान्य किया जा सकता है, यदि पति/पत्नी में से कोई पहले से ही विवाहित है और उसका साथी अभी जीवित है। वह विवाह भी अमान्य किया जा सकता है जिसमें पति/पत्नी में से कोई भी मानसिक रूप से विक्षिप्त हो या नपुंसक हो। लेकिन विवाह को चर्च से अमान्य करवाना बहुत कठिन है क्योंकि इसकी अनुशंसा वैटिकन से करवानी पड़ती है।

कैथोलिकों में मिश्रित विवाह मान्य है (किसी अन्य धर्म के व्यक्ति से)। फिर भी कैथोलिक पति/पत्नी को यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह अपने बच्चों का लालन पालन कैथोलिक मान्यताओं के अनुसार करेंगे।

प्रोटेस्टेन्टों में तलाक की अनुमति है। विवाह सामान्यतः चर्च में रिश्तेदारों और दोस्तों की उपस्थिति में सम्पन्न होता है। विवाहित युगल कानूनी उद्देश्य के लिए अपने विवाह का पंजीकरण करवा सकते हैं। प्रोटेस्टेन्ट युगल सामान्यतया तलाक न्यायालय से प्राप्त करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में तलाक के बाद पुनर्विवाह की अनुमति है।

चर्च की शिक्षा के अनुसार दोनों पक्षों की मुक्त सहमति ज़रूरी है। सहमति दोनों पक्षों की होनी चाहिए और किसी बाहरी दबाव में नहीं होनी चाहिए।

जनजातीय विवाह

सांस्कृतिक रूप से नियंत्रित और वैध वैवाहिक संबंधों के जरिये ही परिवार का अस्तित्व बनता है। अतः विवाह सार्वभौमिक है। हम जनजातियों में भी विवाह से संबंधित कई निर्देशक और निषेधक बातें पाते हैं। फिर भी जनजातियों में जिस तरह से साथी को प्राप्त किया जाता है वह अद्वितीय है। इनमें कूकी जनजाति का मूल्यांकन करने वाला विवाह; नागाओं में कब्जा द्वारा विवाह हो, खरिया और ब्रिहोर में व्यक्ति के साहस और हिम्मत की परीक्षा लेने वाला विवाह, भीलों में; दुल्हन को खरीद कर विवाह करने की प्रथा भारतीय जनजातियों में प्रचलित हैं। दुल्हन की अधिक कीमत के हल के रूप में सेवा के बदले विवाह की प्रथा गोड़ो और बैगा जनजातियों में पाई जाती है। दुल्हन की अधिक कीमतों के हल के रूप में दो परिवार आपस में महिलाओं को बदलने की प्रथा खासी जनजाति में पाई जाती है। उन जनजातियों में जिनमें घोटुल होता है, आपस में विवाह होता है। ब्रिहोर और हो जनजातियों में घुसपैठ द्वारा विवाह।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) हिन्दू विवाह के विभिन्न रूपों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

इस इकाई में आपने विवाह की संकल्पना, विवाह पर समाजशास्त्रीय विचार, विवाह की हिन्दू संकल्पना, विवाह के प्रकार, विवाह के हिन्दू प्रकार, उनके लाभ और हानियों के बारे में अध्ययन किया है। चर्चा में विवाह पर भारतीय विचार एवं हिन्दू विवाह को संस्कार के रूप में मानने को भी शामिल किया गया है। विवाह के रूपों की चर्चा के दौरान हमने एक विवाह, बहु-विवाह, बहुपतित्व, बहु-पत्नी, नियोग, सजातीय विवाह, अनुलोम, प्रतिलोम विवाह के साथ ही अंतर्जातीय और अंतर-धार्मिक विवाहों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की है।

2.7 शब्दावली

धर्म : धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करना।

एकल विवाह : एक पुरुष का एक समय में एक स्त्री से विवाह करता है। जब तक कि दोनों में से कोई साथी वैधानिक रूप से अथवा सामाजिक रूप से अलग नहीं होता।

बहु पत्नीत्व विवाह : एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से विवाह करना।

बहु पतित्व विवाह : एक स्त्री अनेक पुरुषों से विवाह करती है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

राम आहूजा (1993), *इंडियन सोशल सिस्टम*, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर और नई दिल्ली।

अमोल्ड डब्ल्यू ग्रीन (1964), *सोशियोलॉजीः एन एनाल्सिस ऑफ लाइफ इन माडर्न सोसाइटी*, मैकग्रा हिल बुक कम्पनी, जिंक कोगकुष क. लि., न्यूयार्क, संनफ्रांसिस्को, टोरंटो, लंदन, टोकियो।

मान सिंह दास एंड पानोस दी बैर्डीस, *द फैमिली इन एशिया*, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

ल्योनार्ड बैरूम, फिलिप सेल्जनिक, डोर्थी बैरूम डराम (1981), *सोशियोलॉजी, ए टेस्ट विद अ डेटिंग रीडिंग्स*, हार्पर एंड रॉ पब्लिशर्स इंक, न्यूयार्क।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) भारतीय विचारधारा में विवाह को दुल्हन के पिता या किसी उपयुक्त संबंधी द्वारा दूल्हे को सांस्कारिक उपहार प्रदान करने के रूप देखा जाता है ताकि वे मानव जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक कर्त्तव्यों का मिलकर पालन करें। कर्त्तव्य हैं धर्म, अर्थ व काम। धर्म का अर्थ है धार्मिक कर्त्तव्य, अर्थात् नेक काम करना एवं मोक्ष की प्राप्ति करना। अर्थ जीवन का आर्थिक पक्ष है तथा काम मानव जाति के अस्तित्व के लिए बच्चे पैदा करने तथा साथी के प्रति शारीरिक या लैंगिक कर्त्तव्य है। विवाह परिवार और समुदाय के प्रति सामाजिक कर्त्तव्य है, जो आनन्द प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु मानव जाति के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए है। विवाह के बारे में यह भारतीय विचारधारा है।

2) हिन्दू विवाह को संस्कार समझने के अनेक कारण निम्नलिखित हैं:

   i) धर्म (धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करना) विवाह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

   ii) धार्मिक संस्कारों को पूरा करने में कुछ अनुष्ठानों, जैसे कन्यादान, पाणिग्रहण संस्कार, सतपदी आदि कुछ सांस्कारिक सूत्र हैं, को पूरा करना होता है।

   iii) ये अनुष्ठान पंडित द्वारा अग्नि (सबसे पवित्र देवता) के सम्मुख वेद (सर्वाधिक पवित्र ग्रंथ) मंत्रों (अनुच्छेदों) का पाठ करके पूरे किए जाते हैं।

   iv) यह संबंध अपरिवर्तनीय और चिरस्थाई माना जाता है। पति-पत्नी न केवल मृत्यु तक अपितु मृत्यु के बाद भी एक दूसरे से संबंध रखते हैं।

बोध प्रश्न II

1) विवाह के विभिन्न रूप निम्न हैं:

   क) केवल एक गामी विवाह ही विवाह का कानूनी रूप है। एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है, बच्चे पैदा करता है तथा अपने जीवन साथी के साथ सभी अनुष्ठान करता है।

   ख) बहु पत्नीत्व विवाह में पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करता है।

   ग) बहु पतित्व विवाह में एक स्त्री अनेक पुरुषों से विवाह करती है।

   घ) नियोग विवाह का वह रूप है जिसमें महिला को पति की मृत्यु के बाद छोटे भाई द्वारा पत्नी के रूप में अपना लिया जाता है, यहाँ तक कि पति के जीवित होने पर भी छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी के साथ यौन संबंध बनाने का अधिकार रखता है।

2) विवाह के हिन्दू रूप हैं – ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच।

विवाह के ब्राह्म रूप में उचित सज्जा और आभूषणों से सुसज्जित लड़की को पवित्र ग्रंथों में वर्णित संस्कारों को पूरा करने के साथ उसी वर्ग के पुरुष को सौंपी जाती थी। दैव रूप में लड़की का पिता संस्कार कराने वाले यज्ञ पुरोहित को उसके शुल्क के रूप में लड़की देता था। आर्ष रूप में दहेज के स्थान पर विवाह वस्तु विनियम प्रथा के आधार पर होता है जिसमें दूल्हा लड़की के पिता को लड़की के बदले दो या चार पशु देता है। प्राजापत्य विवाह रूप में दूल्हे की पूजा की जाती है तथा बड़े सम्मान व आर्शीवाद के साथ कि, "आप दोनों गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों को पूरा करें" उसका विवाह दुल्हन के साथ किया जाता है। आसुर विवाह रूप में दूल्हे द्वारा दुल्हन का मूल्य उसके पिता को दिया जाता है। यह एक प्रकार का आर्थिक करार है। गांधर्व विवाह में इच्छुक लड़की एकांत में लड़के से विवाह कर लेती है, जब वे दोनों प्यार करते हैं। राक्षस विवाह में पुरुष द्वारा लड़की का अपहरण कर उसके साथ बलपूर्वक विवाह किया जाता है। पैशाच विवाह में बहकाकर, चुराकर या छल से लड़की के नींद में होने, नशे में होने, अचेतन होने पर अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने पर उसके साथ बलात यौन संबंध स्थापित किया जाता है।

विवाह के इन आठ रूपों में से पहले चार को उचित या धर्मानुसार माना जाता है जबकि अंतिम चार को अधर्म माना जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 समाज, संस्कृति, धर्म और पारिवारिक मूल्य

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पारिवारिक जीवनः बदलते प्रतिरूप

3.3 परिवार में मूल्य संरचना के तत्व

3.4 पारिवारिक मूल्यों पर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आयामों का प्रभाव

3.5 नवीन समाज के अभिकर्त्ता (एजेंट) के रूप में परिवार

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में परिवार से संबंधित कुछ आधारभूत संकल्पनाओं का विवरण है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आपः

- परिवार को समाज के मूलभूत अंग के रूप में स्वीकार करने के साथ-साथ बच्चों में मूल्य संरचना का महत्व समझ सकेंगे;
- मानव जीवन में मूल्य पद्धति के बदलते प्रतिरूपों तथा उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों से अवगत हो सकेंगे;
- सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विविधताओं की प्रकृति और प्रभाव का अध्ययन तथा पारिवारिक जीवन के मूल्यों संबंधी उनके विशिष्ट कार्यों का पुनर्मूल्यांकन कर सकेंगे; और
- परिवारों में मानवीय मूल्यों के पुनः नवीनीकरण तथा संरक्षण संबंधी तौर-तरीकों के बारे में सुझाव दे सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पूर्ववर्ती इकाइयों में हमने विवाह के अर्थ, जीवन साथी के चयन और विवाह के प्रकारों के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य, वैश्विक परिवार के अंग हैं तथा किसी व्यक्ति की विशेष संस्कृति और सामाजिक स्तर, जिसमें वह रहता है, प्रत्येक पुरुष/महिला विशेष के परिवार, पड़ोस, शिक्षा तथा सामाजिक वातावरण से अभिन्न रूप से संबंधित होता है। यद्यपि धर्म, संस्कृति और समाज अपने में स्वतंत्र विषय होते हैं किन्तु वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा मानवीय मूल्यों और पारिवारिक जीवन पर उनका गंभीर प्रभाव पड़ता है।

पारिवारिक जीवन शिक्षा के मूल्यों और संबंध पर आधारित होता है। अनेक लोगों को अभी भी पारिवारिक जीवन के प्रतिरूपों में पहले ही हो चुके परिवर्तनों और उनसे सामंजस्य स्थापित करने के बारे में जानकारी प्राप्त करनी है। कुछ लोगों का मानना है कि किसी

खास समय में सभी परिवारों का एक स्थायी आधार होता है जो समकालीन समस्याओं और सामाजिक परिवर्तनों के प्रोद्भूत बलों से अप्रभावित रहता है। यह सत्य नहीं है क्योंकि वैश्वीकरण के युग में परिवार, संस्कृति के बदलते प्रतिरूपों से प्रभावित होते रहे हैं। वास्तव में परिवार एक ऐसा शब्द है जो अधिकांश लोगों में भावनाओं का संचार करता है।

3.2 पारिवारिक जीवनः बदलते प्रतिरूप

परिवार की परिभाषा

परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो एक दूसरे से संबंधित होते हैं तथा आपसी समझ और सहमति के माहौल में मिल-जुलकर रहते हैं। परिवार वह स्थान है जहाँ पर कोई भी व्यक्ति बिना किसी भय अथवा संकोच के अपनी भावनाओं, अन्दरूनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। परिवार एक ऐसा स्थान है जहाँ कोई व्यक्ति अपने को सुरक्षित, अविभाज्य और ऐसे व्यक्ति के रूप में महसूस कर सकता है जो उस स्थान के लिए आवश्यक है। परिवार को उन व्यक्तियों के समूह के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है "जो एक ही घराने के भीतर मिलजुल कर रहते हैं और आमतौर पर उनकी खान-पान की आदतें समान होती हैं अथवा जिनका रसोईघर एक होता है।" ऐसे अनुभव और प्रमाण रहे हैं कि सुरक्षा और स्नेह के माहौल में बच्चों का सर्वोत्तम विकास होता है तथा सच्चे प्यार का स्थान और कोई भी वस्तु नहीं ले सकती है।

परिवार के प्रकार

हाल ही में कुछ वर्षों में एकात्मवाद, भौतिकवाद और मनुष्य को व्यक्तियों के रूप में एक दूसरे से संबंध रखने की उसकी आवश्यकता से उसे अलग-थलग करने वाले उपभोज्य मूल्यों के माध्यम से मनुष्य द्वारा स्वयं अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान दिया गया है। वास्तविक संतोष और प्रसन्नता का अनुभव बाहरी भौतिक धन और संपदा अर्जित करने और शेष मानवता से स्वयं को अलग-थलग करने में नहीं अपितु अन्य लोगों के साथ आत्मीयता और परिवार के रूप में उनके साथ रहने में होता है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य परिवार के धागे में बंधा हुआ है तथा माता, पिता एवं अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से व्यक्ति अपने शेष जीवन का अर्थ और परिचय प्राप्त करता है।

भारत में बसने वाले परिवार का परम्परागत प्रतिरूप संयुक्त परिवार का था, जिसमें परिवार के सदस्य सामान्य वंशावली और सामान्य संपत्ति के बंधनों में बंधे होते थे। अब भारत में हमें परिवार के तीन प्रकार के ढाँचे दृष्टिगोचर होते हैंः

1) बड़ा संयुक्त परिवार

2) एकल परिवार

3) विस्तृत परिवार

संयुक्त परिवार वह होता है जिसमें परिवार की अपेक्षा पीढ़ीवाद की प्रमुखता होती है, जिसके सदस्य, संपत्ति की आय, आपसी अधिकारों और उत्तरदायित्वों द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं।

ऐसे परिवारों में आश्रितों की देखरेख और उनका भरण पोषण नैतिक उत्तरदायित्व माना जाता है। ऐसे परिवार के सदस्य आपस में घनिष्ठतापूर्वक जुड़े होते हैं और वे सामाजिक जीवन के सुख-दुख में सहभागी होते हैं। विपत्ति के समय आपसी जिम्मेदारियों को बखूबी

निर्वाह करते हैं तथा वे परिवार कल्याण के साथ-साथ चिर-परिचित अपने हित का ध्यान रखते हैं। संयुक्त परिवार सहायता रूपी 'संरक्षण' प्रदान करता है जिसके दायरे में वित्तीय नुकसान, पति अथवा पत्नी की मृत्यु और सामाजिक सुरक्षा आते हैं।

संयुक्त परिवार में पले-बड़े बच्चे अधिक दृढ़ निश्चयी, विनोदप्रिय होते हैं तथा एक सुविकसित व्यक्तित्व के स्वामी होते हैं। संयुक्त परिवार किसी अन्य समुदाय की अपेक्षा हिन्दुओं में, किसी अन्य व्यवसाय की अपेक्षा कृषि करने वालों में, व्यापारियों, लिपिकीय और पेशेवर कर्मकारों की तुलना में अधिक पाए जाते हैं। निम्नतम आय वर्ग वाले समूहों में भी संयुक्त परिवार पाए जा सकते हैं। आमतौर पर उनके पास कई एकड़ जमीन होती है और उनके सदस्य अपने आस-पास के व्यक्तियों के ज्ञान, पारिवारिक व्यवसाय, संबंधित मामलों में विश्वास और कौशल के साथ बड़े होते हैं। बच्चे जीवन चक्रों यथा जन्म, परिपक्वता, विवाह और मृत्यु जैसे अनुभवों के साथ विकसित होते हैं। ऐसे परिवारों में लड़का-लड़की संबंध में कोई कठिनाई नहीं होती। अकेली महिला अथवा अनाथ बच्चे की कोई समस्या नहीं होती और विवाह का आयोजन माता-पिता द्वारा किया जाता है।

संयुक्त परिवार प्रथा के सकारात्मक तत्व सदस्यों के लाभों पर आधारित होते हैं यथाः

- पारिवारिक उत्तरजीविता
- वृद्धावस्था में देखरेख
- पारिवारिक आय में वृद्धि
- संपत्ति में अधिक हिस्सा प्राप्त होना
- समुदाय के प्रतिरूप का अनुसरण करना
- घर में और अधिक खुशियाँ लाना

एकल परिवार

एकल परिवार वह होता है जिसमें माता-पिता और उनके अविवाहित बेटे तथा बेटियाँ एक साथ रहते हैं।

विस्तृत परिवार

विस्तृत परिवार संयुक्त परिवार प्रथा का ही बाद में विकसित एक परिवर्तित रूप है। यह एकल परिवार तथा संयुक्त परिवार के मध्य की श्रेणी में आता है। इस प्रकार के परिवार में पुत्रों के विवाह होने, बच्चों के बड़े होने तथा माता-पिता के मूल परिवार के भीतर रहने वाले अन्य व्यक्तियों के साथ एकल परिवार का विस्तार होता जाता है।

परिवार के प्रतिरूपों में स्थिति परिवर्तन

हम तेज़ी से बदलती हुई दुनिया में रह रहे हैं। हम इतिहास के उस दौर में पहुँच गए हैं जब हम घर बैठे दुनिया में घट रही घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हैं। हम पहले की अपेक्षा अत्यंत कम समय में दुनिया घूम लेने में समर्थ हैं। हमारे पास वे समस्त आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ उपलब्ध हैं जो जीवन को सरल, सुखद और आरामदायक बनाती हैं और हमारी अधिकांश समस्याओं के स्वतः निदान उपलब्ध कराती हैं। अनेक व्यक्ति घर बैठे ही अपने व्यवसाय कर रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इतना अधिक विकास हो गया है कि अब व्यक्ति को दुनिया के किसी भी भाग में लिखित संदेश भेजने और उसका उत्तर प्राप्त करने के लिए घर पर बैठकर ही केवल एक बटन दबाना पड़ता है। आज किसी भी विषय से संबंधित आवश्यक सूचना को अपने परिवार के कम्प्यूटर से ही प्राप्त किया जा सकता है।

पिछले कई वर्षों में भारतीय परिवार परिवर्तन के अनेक दौरों से गुजरा है। छः और आठ सदस्यों वाले बड़े परिवारों का स्थान एक अथवा दो स्वतंत्र बच्चों वाले परिवारों ने ले लिया है जो अपने शैशवकाल से खिलौनों और अन्य व्यक्तिगत सामग्री के द्वारा एक-दूसरे के साथ स्वयं को पूर्ण करने के लिए निरंतर सीखते रहते हैं। बड़े परिवारों में जहाँ वयस्क, बच्चे और बुजुर्ग एक सुरक्षित वातावरण में आपस में चर्चा किया करते थे। वहीं आज हम ऐसे अपरिचित एवं एकाकी व्यक्ति बन गए हैं जिनकी अपनी-अपनी अलग-अलग दुनिया है। आज बुजुर्गों को सुविधानुसार वृद्धाश्रमों में डाल दिया जाता है और बच्चे अपने माता-पिता के कार्यालयों से लौटने तक या तो स्कूल के फाटकों पर प्रतीक्षा करते रहते हैं अथवा टी.वी. के सामने बैठे रहते हैं। जो बच्चे बंद घरों में अथवा नौकरों के साथ अथवा स्कूल के अन्य बच्चों के साथ लम्बा समय गुजारते हैं उनमें तिरस्कार, अवसाद और एकाकीपन की भावना विकसित होती है। स्कूल से लौटने के बाद लम्बे समय तक वे खिलौनों से खेलते हैं, कहानियों की किताबें पढ़ते हैं, टी.वी., कम्प्यूटर खेल खेलते हैं और कार्टून देखते हैं, जिनकी वजह से बच्चों में यांत्रिक, अमानवोचित, एकलवादी और संकीर्ण मानसिकता वाले दृष्टिकोण पनपते हैं।

परिवारों में स्थिति परिवर्तन का महत्व

संयुक्त परिवारों को पुराना कहकर खारिज नहीं किया जा सकता है। अनेक हिन्दू और मुस्लिम परिवार आज भी उस शैली को अपनाते हैं। पद और धन इस व्यवस्था की शर्तें नहीं होती अपितु यह व्यवस्था रक्त संबंध और सामाजिक मूल्य पर अवलंबित होती है। उनमें से अधिकांश ग़ैर-शहरी, ग़ैर-औद्योगिक बस्तियों में पाए जाते हैं। यह जान लेना और भी अधिक रुचिकर है कि किसी विस्तारित परिवार के संबंधी एक ही घराने में न रहने पर भी आज उनका अपना एक सामान्य बजट होता है और वे उसी परिवार के मुखिया का अनुसरण करते हैं। इसके अलावा, अलग से रहने वाले सदस्यों में भी हमें यह देखने को मिलता है कि वे सभी एक संयुक्त परिवार तथा प्रथा से जुड़े होते हैं तथा इसके मूल्य में विश्वास करते हैं।

सभी विस्तृत परिवारों से समस्याएँ जुड़ी रहती हैं क्योंकि संयुक्त परिवार पति/पत्नी के बीच दाम्पत्य बंधनों की अपेक्षा वयस्क पुरुषों के बीच संबंधों पर आधारित होते हैं। व्यवस्थित विवाह वाली इस व्यवस्था के टूटने के खतरे नगण्य होते हैं। पत्नियों में बड़ी इकाइयों के प्रति पतियों की तरह अनुराग की भावना नहीं होती है और उनमें झगड़े होते हैं। प्रतिस्पर्धाएँ होती हैं तथा महिलाओं एवं बच्चों में असंतोष भड़कता है। हाल के वर्षों में अधिकांश भारतीय एकल परिवारों में रहने को प्राथमिकता देते रहे हैं। अतः धर्म की भूमिका पारिवारिक जीवन और मानवीय जीवन को यथार्थ रूप प्रदान करने की होती है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) परिवार शब्द की 'परिभाषा' लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 परिवार में मूल्य संरचना के तत्त्व

मूल्यों की परिभाषा

मूल्य वे होते हैं जो हमारी सोच और रहन-सहन को निर्देशित करते हैं तथा हमारे अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करते हैं। हमारे प्रिय मूल्य हमारे उन कार्यों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं जिनके द्वारा हमारे जीवन को एक विशिष्ट पहचान प्राप्त होती है। किसी व्यक्ति का मूल्य वह गुण होता है जो उसे एक ऐसी छवि प्रदान करता है जिसके द्वारा अन्य व्यक्ति उसके बारे में कोई राय बनाते हैं अथवा उसका मूल्यांकन करते हैं। मूल्यों को सार्थक बनाने के उद्देश्य से, उन्हें व्यावहारिक तथा निर्देशक बनना होता है।

मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्यों को वैयक्तिक, सामाजिक और तटस्थ के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण व्यक्ति द्वारा परम्परागत रूप से अपनाए जाने वाले रिवाजों और विश्वासों पर आधारित है जिस पर समाज गर्व करता है तथा जो अंतर्निहित संस्कृति को संरक्षण प्रदान करता है।

मूल्यों को भौतिक मूल्य और उच्चतर मूल्यों में वर्गीकृत किया जा सकता है। भौतिक वस्तुओं के अपने अलग-अलग मूल्य होते हैंः भोजन, शारीरिक, स्वास्थ्य और वस्त्र ऐसे प्रत्यक्ष भौतिक मूल्य हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति अपना परिचय प्रस्तुत करता है और जो समाज में जीवित रहने के लिए आवश्यक होते हैं। उच्चतर मूल्य व्यवहार द्वारा ही दृष्टिगोचर होते हैं। चूँकि भोजन मानव जीवन की एक आवश्यकता है अतः दैनिक भोजन के लिए श्रम करना एक मूल्य है किन्तु एक व्यक्ति के पास उपलब्ध संसाधनों को अन्य ज़रूरतमंद लोगों के बीच बाँटना उच्चतर मूल्य है। हालाँकि आनन्द एक मूल्य है किन्तु आनन्द प्रदान करने वाली सभी वस्तुओं का मूल्य भी हो, यह आवश्यक नहीं है, यद्यपि सभी वस्तुओं को रखने की इच्छा हो सकती है। उच्चतर मूल्य शाश्वत होते हैंः उन्हें मानवीय अथवा दैवीय मूल्य माना जा सकता है।

जब कभी कोई प्रश्न उठता है तब मूल्यों की अभिव्यक्ति की आवश्यकता उत्पन्न होती है। जीवन छोटे और बड़े निर्णयों से मिलकर बना है जहाँ परिवार एक दूसरे से प्यार करते हैं और एक दूसरे का ध्यान रखते हैं, ईश्वर की आज्ञा मानते हैं और उसे इस ब्रह्मांड का सृष्टिकर्ता और केन्द्र बिन्दु मानते हैं। उन परिवारों की प्रगति होगी, उनमें शांति और सद्भाव रहेगा और उनमें मानवीय गुणों का विकास होगा।

समाजीकरण और मूल्य संरचना

सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का पारिवारिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। वास्तव में कोई भी परिवार इन कारकों से स्वतंत्र नहीं रह सकता है। किसी व्यक्ति के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था समाजीकरण है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लड़का/लड़की अपने जीवन में महत्वपूर्ण व्यक्तियों अर्थात् माता-पिता, अध्यापकों, भाइयों अथवा बहनों से सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक प्रथाओं को अपनाते हैं, उनसे तादात्म्य स्थापित करते हैं तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार एक बच्चा दृष्टिकोण और मूल्यों को अर्जित करता है। उनमें से कुछ नैतिक मानदंडों से संबंधित होते हैं जबकि कुछ लोगों के प्रेम-घृणा, उत्कृष्टता एवं निष्कृष्टता आदि से संबंधित होते हैं। बच्चों में ये दृष्टिकोण एव मूल्य, वातावरण, मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं तथा भौतिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न तरीकों और अलग-अलग स्तरों में विकसित होते हैं।

समाजशास्त्री, समाजीकरण को सांस्कृतिक अनुकूलन प्रक्रिया के रूप में मानते हैं। किसी बच्चे को एक व्यक्ति के रूप में सफल होने के लिए समाजीकरण ज़रूरी है। समाजीकरण में एक संरचनात्मक संबंध होता है। माता-पिता द्वारा सामाजिकता को अपनाए जाने के फलस्वरूप व्यक्ति अपने बच्चों तथा पौत्र/पौत्रियों के लिए समाजीकरण के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करता है। पीढ़ियों से ये उत्तरदायित्व नियमबद्ध एवं निर्धारित हो जाते हैं। यह समझना सरल है कि संयुक्त परिवार प्रथा से संबद्ध अनुकूलन की जड़ें भारतीय समाज में इतनी गहरी हो सकती है कि यह 2000 से भी अधिक वर्षों का समय बीत जाने के बावजूद अपनी संस्कृति, विश्वासों के साथ विद्यमान हैं तथा समाजीकरण की प्रक्रिया एक ऐसे पारिवारिक जीवन को सार्थक मूल्य प्रदान करती है जो समाज का अविभाज्य अंग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति विशेष तथा परिवारों को समाज के हित को ध्यान में रखते हुए इस प्रथा को जारी रखने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस दृष्टि से मूलतः समाजीकरण की प्रक्रिया किसी एकल व्यक्ति को समाज के सामाजिक मानदंडों तथा सांस्कृतिक प्रतिरूप के अनुरूप स्वयं को ढालने की ही प्रक्रिया है। अनेक व्यक्तियों में बलात् प्रतिरूपों के इस प्रकार से स्वयं को दूर रखने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि समस्त मनुष्यों में स्वतंत्रता और आत्माभिव्यक्ति, स्वाभाविकता और स्वयं की पहचान की उत्कंठा होती है। यही वह कारण है कि किशोरों और युवाओं में अपने माता-पिता तथा वरिष्ठ लोगों के प्रति विद्वेष और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है।

मूल्य निर्माण में अभिभावक और संतानों के पारस्परिक कार्यकलाप

माता-बच्चे का संबंध भावनात्मकता से परिपूर्ण एक ऐसा संबंध है जो समाजीकरण की प्रक्रिया को सरल एवं कारगर बनाता है। मानव का जीवन लम्बा होने के कारण समाजीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है। यह पिता अथवा माता द्वारा प्रभुत्व का प्रतिरूप सीखने की प्रक्रिया का आधार तैयार करता है तथा बच्चों के मस्तिष्क में दृष्टिकोणों तथा मूल्यों की स्थापना करता है।

परिवारों के माध्यम से बच्चों को पहले ही हो चुके अनुभवों को समाज के रहन-सहन और विचार-विनिमय के द्वारा प्रभावी तथा प्रभावशाली बनाया जाता है। इस अवस्था में, पिता और माता के अनुभव और माता-पिता-बालक संबंधों को मज़बूती और आत्म तत्व के मूल्यों (बच्चे की पहचान, सुरक्षा और स्वयं की छवि) का निर्धारण करेंगे जो बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए महत्वपूर्ण होंगे।

स्कूल पूर्व की आयु वाले बच्चे पहले से ही प्रतिस्पर्द्धा के दौर में हैं। अपनी पहचान सिद्ध करने तथा अपनी हैसियत साबित करने को लालायित माता-पिता अपने बच्चों को अध्ययन, खेलकूद, संगीत तथा अन्य क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए अनुचित दबाव डालते हैं; उनकी क्षमता से अधिक तथा जल्दी कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे माता-पिता के इस अभियान से बच्चों में तनाव और हीनता की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और वे स्कूल तथा घर में शारीरिक एवं मौखिक तिरस्कार एवं अपमान के शिकार होते हैं।

पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित करने में महिलाओं की भूमिका

हम समाज और परिवार दोनों में ही महिलाओं की भूमिका और प्रकृति को दरकिनार करके पारिवारिक मूल्यों की संरचना के बारे में संतोषजनक ढंग से बात नहीं कर सकते हैं। घर, समाज का केन्द्र बिन्दु है और इसका केन्द्र महिलाएँ होती हैं। घर-परिवार पहली ऐसी संस्था है जो एकल व्यक्ति को एक पहचान प्रदान करता है और जहाँ किसी पुरुष/महिला की कोई छवि बनती है। माँ को दिया गया सम्मान एवं आदर किसी परिवार में काफी हद

तक ऐसे मूल्यों का निर्धारण करता है जिसके आईने में वह समाज के अन्य वर्गों को देखता है।

"यदि कोई महिला किसी बच्ची को जन्म देती है तो उसकी स्थिति निम्न स्तर की मानी जाती है, और दूसरे लोग उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं। दूसरी ओर पुत्र उत्पन्न करना एक महान उपलब्धि माना जाता है।" (भसीन प्रकाशनः 1972)। ऐसे परिवार लड़कियों के बारे में अच्छी धारणा नहीं रखते हैं। ऐसी लड़कियाँ बाद में महिलाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखती हैं और वहीं नकारात्मक मूल्य पीढ़ियों तक चलते रहते हैं।

"भारत के नागरिकों के मन मस्तिष्क में सांस्कृतिक समायोजन की छाप इतनी गहरी है कि शिक्षित और तथाकथित विद्वत्जन और शहरों में रहने वाले समृद्ध लोग भी पुत्र की ही कामना अधिक करते हैं।"

यद्यपि शहरों में कुछ परिवर्तन देखते को मिलते हैं किन्तु गाँव की अधिकांश महिलाएँ आज भी पुरुष और परम्परागत सामाजिक रिवाजों के दमन के अंतर्गत जीवित हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पारिवारिक मूल्यों का एक महत्वपूर्ण तत्व घर और समाज में महिलाओं द्वारा अदा की जाने वाली भूमिका की स्थिति पर निर्भर करता है। महिलाओं की अपनी छवि, अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों का उपयोग करने के लिए अवसर तथा अनुकूल माहौल पारिवारिक सदस्यों को प्रदान किए गए मूल्यों की गुणवत्ता में अत्यधिक योगदान करते हैं। अतः भारतीय परिवारों में नवीन मूल्यों की संरचना हेतु महिलाओं का सशक्तिकरण आवश्यक है।

3.4 पारिवारिक मूल्यों पर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आयामों का प्रभाव

पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्य

परिवार की रचना व्यक्तियों से होती है किन्तु यह बड़े सामाजिक तंत्र का एक भाग भी होता है। इस प्रकार एकल व्यक्ति संस्कृति के पहलकर्ता और प्रवर्तक होते हैं। परिवार एकल व्यक्तियों और समाज के मध्य मध्यस्थ का कार्य करता है। परिवारों में और परिवारों के माध्यम से ही लोगों की शिक्षा एवं मूल्यों की प्रक्रिया जारी रहती है। किन्तु व्यक्तियों की बचपन में माता-पिता द्वारा, किशोरावस्था में मित्रों द्वारा और वयस्क होने पर अन्य व्यक्तियों द्वारा समाज के सभी सदस्यों की लगातार निगरानी की जाती है। परिवार वह होता है जहाँ बच्चों का पालन-पोषण किया जाता है; जहाँ वयस्क व्यक्ति को प्रशंसा करने, आलोचना करने, सुझाव देने तथा आदेश देने की खुली छूट होती है ताकि बच्चे परिवार की प्राथमिकताओं के बारे में सीख सकें। उन्हें यह सिखाया जाता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा, दूसरों से क्या कहना है और क्या नहीं, घर के अंदर तथा बाहर कैसा व्यवहार करना है, उनके मित्र कैसे होने चाहिए आदि। ये सभी बच्चों के दृष्टिकोण, मूल्यों तथा आचरण पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं तथा जीवन भर उनके साथ रहते हैं। वे जो कुछ सीखते हैं वह समाज की संस्कृति और रीति-रिवाजों का ही एक भाग होते हैं जिसका वयस्क लोगों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है।

परिवार एक सामाजिक संस्था के रूप में समाज का बुनियादी ढाँचा है। अतः परिवार तथा समाज के बीच मूल्यों का प्रवाह अत्यधिक प्रांजल होता है तथा वे प्रभाव स्पष्ट होने से पूर्व अत्यधिक घनिष्ठापूर्वक, आत्मीयतापूर्वक और एक दूसरे पर निर्भर होकर क्रियाशील रहते हैं।

यह कहना गलत नहीं है कि परिवार के माध्यम से ही लड़के/लड़की अपनी प्रारंभिक अवस्था में मूल्यों तथा दृष्टिकोणों को सीखते हैं। किसी विशेष समाज में सांस्कृतिक संवाद को जारी रखने का मुख्य अभिकर्त्ता महिला होती है।

परिवार का महत्व समाज में परिवार की मध्यस्थता संबंधी कार्यों को करने का है क्योंकि यह एकल व्यक्ति को बड़े सामाजिक ढाँचे से जोड़ता है। समाज के एक भाग के रूप में, परिवार अपनी पहचान को समाज से जोड़े रखना चाहता है अतः सामाजिक मूल्यों से पारिवारिक मूल्यों में अधिकांशतः कोई परिवर्तन नहीं होता है।

सामाजिक रूप से, व्यक्ति का संबंध अन्य व्यक्तियों से कम होता जा रहा है। वह यांत्रिक और तकनीकी रूप से उत्पादित संचार माध्यमों के संपर्क में अधिक रहता है। संचार, जो संबंध और सामाजिक संबंध का माध्यम है, का मनुष्य की अपेक्षा संचार माध्यमों और उनसे संबंधित शिक्षा और ज्ञान से अधिक संबंध है। संचार माध्यमों ने मानवीय विचार-विमर्शों के स्थान पर सामूहिक विचार-विमर्शों को प्रतिस्थापित करने में भी मदद की है।

अध्ययनों से पता चलता है कि (ईरिच फ्रॉम, 1973) जिस समाज में मानव जीवन और रहन-सहन का आकलन किया जाता है वहाँ प्रतिस्पर्धा बहुत कम होती है और वहाँ शायद ही किसी व्यक्ति का कोई शोषण होता है। वहाँ कार्य को आवश्यक रूप से सहयोग के साथ किया जाता है और वहाँ कोई आर्थिक प्रतिद्वंद्विता नहीं होती। वहाँ महिलाओं का सम्मान किया जाता है और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में शामिल किया जाता है। हम यह भी देखते हैं कि अन्य समाजों में ठीक इसके विपरीत स्थिति है। वहाँ धन और सफलता को मानव जीवन से अधिक महत्व दिया जाता है। जब धन, पद-प्रतिष्ठा तथा शक्ति का मूल्यांकन किया जाता है तब एक व्यक्ति आक्रोश, हिंसा, प्रतिस्पर्द्धा और जोड़-तोड़ पर उतारू हो जाता है। परिवार उन मानवीय मूल्यों का संरक्षण करने में असमर्थ हो जाते हैं जो सदस्यों का सही मार्गदर्शन और समर्थन दे सकें, क्योंकि वे सामंतों, कर्मचारियों, पड़ोसियों तथा सामाजिक संगठनों के अपेक्षित प्रभावों के अधीन होते हैं।

महात्मा गांधी के अनुसार, "सत्य और प्रेम नामक मूल्यों की युवा वर्ग अत्यधिक प्रशंसा करता है और उन्हें अत्यधिक सम्मान प्रदान करता है।"

परिवार और संस्कृति में मूल्य

भारतीय परिवार की संस्कृति रीति-रिवाजों, प्रथाओं और विश्वासों के अनुसरण की एकल या परम्परागत संस्कृति न होकर अनेक प्रथाओं और विविध रूपों के मेलजोल की संस्कृति है। बुजुर्ग लोग मुख्य व्यक्ति हुआ करते थे, युवाओं को उनकी बात माननी होती थी, उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे, वे परिवार, जीवन, माता-पिता-बच्चा संबंध तथा अनुशासन की परम्पराओं और मूल्यों की जानकारी देने वाले अभिकर्त्ता होते थे। वैश्वीकरण संस्कृति के अंधाअनुकरण के कारण भारतीय संस्कृति की विलक्षणता लुप्त होती जा रही है।

तथापि गाँव आज भी आतिथेय की भावना, सादगी, शालीनता और ईश्वर में विश्वास रखने संबंधी परम्परागत मूल्यों को जीवित रखे हुए हैं। यह अलग बात है कि उन्हें आर्थिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास से वंचित रखकर आधुनिकता से बाहर कर दिया गया है।

मनुष्य की श्रेष्ठता में भाषा का विकास करना और अर्थपूर्ण, सृजनात्मक व्यवहार को संरक्षण प्रदान करना तथा बाह्य अभिव्यक्तियों द्वारा अन्दरूनी परिस्थितियों को संसूचित करना शामिल है। मूल्यों के सांस्कृतिक निहितार्थ किसी समाज की प्रथाओं, प्रतीकों, धार्मिक संस्कारों तथा रीति-रिवाजों से जुड़े होते हैं। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों अथवा राष्ट्रों की परम्पराएँ और भाषाएँ भी उस सजातीय समूह की अभिव्यक्तियाँ होती हैं जिनमें कोई

व्यक्ति संबंधित होता है। हालाँकि भारत अपनी अलौकिक संस्कृति के लिए विख्यात है किन्तु भिन्न-भिन्न धर्मों और क्षेत्रों की अपनी-अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है। संस्कृति की अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति की जीवन शैली, खान-पान की आदतों, वेशभूषा तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों में दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति की अपेक्षा अनुपम हो सकती है किन्तु प्रत्येक संस्कृति का अपना सौंदर्य होता है और इसमें विशिष्ट संदेश, मूल्यों की व्याख्याएँ एवं अभिव्यक्तियाँ अंतर्निहित होती हैं जो उस समाज के लोगों को प्रिय होती हैं। अलग-अलग किन्तु सृजनात्म्क तरीकों के माध्यम से अनुभव की गई तथा अभिव्यक्त की गई अनुभूति की विविधता दिए गए सांस्कृतिक संदर्भों में सीखकर, समझकर और स्वीकार करके किसी व्यक्ति के जीवन को साकार कर सकती है। परिवार वह स्थान है जहाँ एकता, एकात्मकता, भिन्न-भिन्न मतों और अभिव्यक्तियों का सद्भाव और आदर का वातावरण निःसंदेह एक एकरूप चेतना का रूप ग्रहण करता है।

भारत अनेक परस्पर विरोधाभासों और महान सांस्कृतिक जटिलताओं वाला देश है। लोगों में सामाजिक विविधता और क्षेत्रीय अंतर पाए जा सकते हैं। साथ ही भारतीय परिदृश्य की विविधता में पारिवारिक जीवन में मूल्यों से संबंधित किसी सर्वमान्य निर्णय को ले पाना अत्यधिक कठिन है। किन्तु अनेकता में एकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है जो पारिवारिक जीवन में सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के सकारात्मक आयामों में परिलक्षित होती है।

पुराने दृष्टिकोण और पूर्वाग्रह आज भी विद्यमान हैं और सामाजिक विचारधारा को बदलने में समय लग रहा है। चूँकि मूल्य, संस्कृति, धर्म सामाजिक रूप से निर्धारित दृष्टिकोण, व्यवहार और रीति-रिवाजों में समाए हुए हैं। अतः पारिवारिक मूल्यों के संवर्धन के लिए एक मूल्यांकन और महत्वपूर्ण प्रश्नावली वाली विधि अपेक्षित है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में लोग रहन-सहन के नए तौर-तरीके अपनाते हैं। पुराने रीति-रिवाजों और प्रथा को युवा पीढ़ियाँ अप्रासंगिक मानने लगती हैं। अतः, सार्थक मूल्यों की शुरुआत एक आवश्यकता बन जाती है। उदाहरण के लिए, महिलाओं की भूमिका को परिवार के अंदर पति और बच्चों की देखरेख करने के रूप में ही माना जाता था, लेकिन अब चूँकि महिलाएँ पुरुषों के समान ही घर से बाहर भी कार्य कर रही हैं, अतः महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आवश्यक है। यह अनुभूति पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित करती है।

परिवार और धर्म में मूल्य

दुनिया अंतिम सत्य नहीं है। सभी धर्म यही शिक्षा देते हैं। बाइबल, गीता, कुरान और अन्य धर्मग्रंथ यह पुष्टि करते हैं और बताते हैं कि निराकार सर्वशक्तिमान ईश्वर की एक महाशक्ति है जो हमारी आँखों और भौतिक संसार जिसमें हम रहते हैं, के लिए अदृश्य है।

सभी धर्म लोगों में एक परिपक्व चेतना लाने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। धर्म ऐसी मानक संहिता उपलब्ध कराता है जो ईश्वर की जानकारी के बारे में लोगों का मार्गदर्शन करेगी और उन्हें उसकी अनुभूति करने में समर्थ बनाएगी। धर्म को लोगों में एक ऐसा संतुलित, सद्भावपूर्ण, परहितकारी दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करनी चाहिए जो सभी लोगों को अपनी जाति, पंथ, धर्म अथवा रीति-रिवाज/भाषा की परवाह किए बिना स्वीकार्य हो।

सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों में अंतर करना कठिन है क्योंकि वे पारिवारिक जीवन को प्रभावित करते हैं। धर्म मूलतः ईश्वर में किसी व्यक्ति के विश्वास से संबंध रखता है और यह बताता है कि उसे इस दुनिया में किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना

चाहिए। अतः धर्म 'कानून' बनाता है अथवा ईश्वर और दूसरों के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, इसकी शिक्षा देता है जिसे धर्म कहा जाता है। सभी धर्म प्रवर्तकों ने यही शिक्षा दी है कि हमें किस प्रकार ईश्वर की आराधना करके और अपने आसपास के लोगों के साथ कैसा व्यवहार करके जीवन व्यतीत करना है। अतएव भगवान बुद्ध ने करुणा और भौतिक आनन्द की इच्छा कम रखने और (ध्यान) करने की शिक्षा दी। ईसा मसीह ने अपने आसपास के लोगों की सेवा के लिए आत्म उत्सर्ग अर्थात् अपना जीवन तक अर्पित करने की शिक्षा दी। हिन्दूवाद में निष्काम कर्म के बारे में बताया गया है, जिसका अर्थ है कि अपना कर्त्तव्य करो और फल की इच्छा मत रखो। तथापि, सत्य यह है कि यह किसी समाज का धार्मिक विश्वास ही होता है जो परिवार और समाज में अन्य मूल्यों के लिए आधारशिला का कार्य करता है।

पारिवारिक मूल्य और लैंगिकता (सैक्स) के प्रति दृष्टिकोण

अनेक मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाशास्त्रियों के अध्ययन तथा मूल्यांकन के अनुसार, माता-पिता के दृष्टिकोण और मूल्य (चाहे वे सकारात्मक हों चाहे नकारात्मक) बाद के वर्षों के लिए बच्चों के हाथों में सर्वाधिक शक्तिशाली यंत्र बन जाते हैं। बच्चों में बचपन से ही अपनी छवि तथा अन्य व्यक्तियों के साथ बाद के वर्षों में उनके विचार-विमर्श की सामर्थ्य पर परिवार में सिखाए गए लिंगभेद संबंधी मूल्यों के प्रारंभिक अनुभवों का प्रभाव पड़ता है।

एक शास्त्रीय अवधारणा के अनुसार, पाँच अथवा छः वर्ष की आयु वाला छोटा सा बच्चा अपनी लिंगभेद संबंधी इच्छाओं के प्रथम उद्देश्य के रूप में अपनी माँ का चयन करता है। इसी प्रकार लड़कियाँ अपने पिता का चयन करती हैं। बच्चों में लिंगभेद की भावना के बारे में उचित मूल्यों के विकास हेतु इस अवस्था में परिवार के सदस्यों और बाह्य व्यक्तियों के साथ सकारात्मक, संतुलित, संबंध के साथ बच्चों का पालन-पोषण किया जाना आवश्यक है। दुनिया के लिए ईश्वर की योजना में विशेष प्रयोजनार्थ शरीर के एक अंग के रूप में सैक्स की जानकारी बच्चों को धीरे-धीरे प्रदान की जानी होती है क्योंकि धीरे-धीरे उनके जीवन में परिवक्वता आती है।

लिंगभेद पर ध्यान दिए बिना सभी व्यक्तियों का सम्मान वह उच्चतर मूल्य है जो बहुत कम लोगों में देखने में आता है। साथ ही जिस परिवार में व्यक्तियों का आदर-सम्मान नहीं किया जाता और सैक्स को आनन्द तथा मौज-मस्ती के रूप में माना जाता है उन परिवारों के बच्चों में सैक्स के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सकता है जो समाज में महिलाओं के शोषण करने वालों के रूप में विकसित हो सकते हैं।

पारिवारिक मूल्य तथा संचार-माध्यमों की भूमिका

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि संयुक्त परिवार के टूटने तथा औद्योगीकरण के आगमन से पारिवारिक वातावरण में अत्यधिक बदलाव आए हैं। परिवार का आकार छोटा हुआ है, बुजुर्ग लोगों और बच्चों को घर पर अकेला छोड़ दिया जाता है और माता-पिता के पास कार्य की इतनी अधिकता है कि उनके पास बच्चों आदि के लिए समय ही नहीं है। भौतिकवाद और उपभोगवाद ने परिवारों और परिवारों के बीच में अकेलेपन और एकाकीपन की आवश्यक चिंताएँ उत्पन्न कर दी है। विज्ञापन, भोजन, वेशभूषा और मित्रों से संबंधित मूल्य नियत करते हैं। बच्चों में मूल्यों की वही अवधारणा बनती है जिसे वे संचार माध्यमों में देखते और सुनते हैं। बच्चों तथा वयस्कों दोनों के ही लिए टी.वी., इंटरनेट, कम्प्यूटर और अन्य औद्योगिकीय उपकरण मनोरंजन का साधन बन चुके हैं।

सोने से पूर्व अपने माता-पिता तथा दादा-दादी से कहानियाँ सुनने के स्थान पर, बच्चे सोने से पूर्व संगीत, धारावाहिक और कथाचित्र (कार्टून) देखना पसंद करते हैं। टेलीविजन पर

निरंतर दिखाए जाने वाले फिल्मी कलाकार आज बच्चों के आदर्श बन गए हैं। पारिवारिक मूल्यों के विरुद्ध संचार-माध्यमों में संतुलन बनाए रखना माता-पिता के वश की बात नहीं रही है।

इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि अब बच्चे मानवीय जीवन और पारस्परिक शिक्षा के विस्तृत आयाम की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे अपने आसपास की दुनिया के बारे में अपनी बौद्धिक उत्सुकता और सामान्य ज्ञान में तेज़ी से वृद्धि कर रहे हैं। किशोर, युवा और वयस्क अपने अधिकारों के बारे में अधिक जागरूक हो रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण, पशु संरक्षण और मानवाधिकार आज के युवाओं के लिए प्राथमिक मुद्दे होते जा रहे हैं। परिवारों में बच्चों और वयस्कों की संचार-जगत के साथ के समाहरण की माँग एक दुःस्वप्न बन गई हैं जो परिवार के सदस्यों की गरिमा और स्व-मूल्य को प्रभावित करती है।

3.5 नवीन समाज के अभिकर्त्ता (एजेंट) के रूप में परिवार

मूल्य संरचना की प्रक्रिया और परिवार

यह सच है कि परिवार किसी स्थिर और सुदृढ़ समाज की आधारशिला है जिसे संपूर्ण विकासशील राष्ट्रों में व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है। यह एक जटिल प्रकरण है क्योंकि परिवार, समाज, संस्कृति और धर्म अभिकारक हैं और एकल व्यक्तियों तथा परिवारों में मूल्यों को स्वरूप प्रदान करने के लिए इनमें से प्रत्येक को कुछ न कुछ योगदान देना है।

परिवार एक 'लघु पाठशाला' है और यहीं से बच्चे अन्य लोगों के साथ संबंध बनाने के बारे में सीखते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बच्चा जीवन के प्रथम वर्ष में अपने माता-पिता से सीखता और अनुभव ग्रहण करता है। चार वर्ष की आयु तक बच्चे के व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को काफी हद तक स्वरूप प्राप्त होता है। इस अवस्था में बच्चे के जीवन में महत्वपूर्ण व्यक्ति उसके माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा और चाचियाँ होते हैं। यह वह समय होता है जिसमें माता-पिता परिवारों में एक अच्छी आधारभूत भूमिका अदा कर सकते हैं।

मानवता का भविष्य परिवार द्वारा ही तय होता है। दार्शनिकों और विश्लेषकों का मानना है कि समाज परिवारों का एक ढाँचा है और परिवारों में पाए जाने वाले संबंधों के आधार पर किसी समाज की विशेषताओं का निर्धारण किया जा सकता है। समाज के महत्व के कारण ही प्रारंभिक नैतिक एवं आचार-संहिता लेखन परिवार पर ही अधिकाधिक केन्द्रित थे किसी समाज की समृद्धि और प्रगति परिवार के सदस्यों के सकारात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार पर निर्भर करती है। जब ये दृष्टिकोण और संबंध परिवार से समाज में फैलते हैं तब समाज परिवार का दर्पण बन जाता है। जब यही प्रभाव उल्टा होता है तब परिवार मूल्य संरचना का दर्पण बन जाता है। किसी भी स्थिति में, परिवार और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और उनमें से एक का तो हमेशा ही प्रभुत्व रहेगा।

परिवार को परिवर्तन की बुनियादी इकाई होना चाहिए

समाज और प्रगति से संबंधित किसी भी शैक्षिक क्षेत्र द्वारा सामाजिक संस्था की बुनियादी एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में परिवारों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। समाज का आधारभूत स्तर होने के कारण परिवार, व्यक्तियों के कल्याण और विकास के साथ स्वतः संबंधित रहता है। एक सुखी परिवार वह होता है जिसमें माता-पिता और बच्चे

एक साथ उल्लास का अनुभव करें और विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्नेह की भावना हों। रोटी, कपड़ा और मकान सभी मनुष्यों की बुनियादी ज़रूरतें हैं लेकिन किसी परिवार की असली प्रसन्नता प्यार, विश्वास, समझदारी, क्षमा, कम भाग्यशाली लोगों तक पहुँचने में, किसी व्यक्ति की प्रतिभाओं, स्वाभाविक गुणों तथा योग्यता को मान्यता प्रदान करने जैसी उच्चतर आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। पारिवारिक जीवन की सार्थकता, शारीरिक, मानसिक और वीरता की भावना से परिपूर्ण, भावनात्मक रूप से परिपक्व और परामर्शवादी विचारों वाली सुदृढ़ व्यक्तियों को राष्ट्र के नागरिकों के रूप में आगे लाने में है। व्यक्तियों को समाज में क्रांति लाने के लिए तैयार और शिक्षित किया जाना चाहिए। अतः स्कूल को बच्चों में दृष्टिकोण संबंधी परिवर्तन लाने और मूल्यों का विकास करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है। परिवारों के सहयोग से ऐसा किया जा सकता है। अभिभावक-अध्यापक संघ और प्रबंधन समितियाँ ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा स्कूल और परिवार मूल्य निर्माण की सही भावना से बच्चों की शिक्षा संबंधी सहयोगपरक जिम्मेदारी का निर्वहन कर सकते हैं।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ तथा बुनियादी जीवन अभिविन्यास

1) बुनियादी विश्वास बनाम बुनियादी अविश्वास;
2) स्वायत्तता बनाम संकोच एवं शंका;
3) स्वप्रयास बनाम दोष;
4) प्रयास बनाम हीन भावना;
5) पहचान बनाम भूमिका के बारे में भ्रम;
6) घनिष्ठता बनाम एकाकीपन;
7) उत्पादकता बनाम स्थिरता;
8) अहमन्यता बनाम निराशा

पुरुषों और महिलाओं की रचना ईश्वरीय कल्पना से की जाती है ताकि वे भले-बुरे के बारे में सोच सकें, उसके बारे में प्रश्न पूछ सकें तथा उनमें भेद कर सकें, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण कर सकें तथा अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

मूल्य स्पष्टीकरण पर माता-पिता का ध्यान

समाज में नैतिक व्यक्ति के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से बच्चों का स्पष्ट रूप से परिभाषित ऐसे मूल्यों वाले वातावरण में विकसित/बड़ा होना आवश्यक है जो वयस्कों द्वारा व्यवहार में लाए जाते हैं। बच्चों द्वारा माता-पिता को ऐसा करते और बातचीत करते देखना/सुनना आवश्यक है जिसमें वे विश्वास रखते हैं। अधिकांशतः बच्चे जब छोटे होते हैं तब नकल के माध्यम से और बड़े होने पर तर्क शक्ति के माध्यम से सीखते हैं। वे कथनी व करनी में अंतर देखते हैं, जबकि वे उसे एक देखना चाहते हैं। अतः परिवार के दैनिक जीवन में माता-पिता द्वारा शुरू किए गए मूल्यों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। बच्चे जीवन में मूल्यों के प्रयोजन के प्रकाश में उन्हें समझने और स्वीकार करने के उद्देश्य से मार्गदर्शन और प्रश्नों के उत्तर चाहते हैं। अतः प्रत्येक परिवार द्वारा बच्चों के प्रशिक्षण और शिक्षण की शुरुआत व्यक्ति विशेष की पहचान के प्रश्न के साथ होनी चाहिए।

मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आता हूँ? मैं कहाँ जा रहा हूँ? यह बुनियादी आधारभूत जीवन सिद्धान्त बच्चों के सकारात्मक समाजीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण आधार होना चाहिए। अतः पारिवारिक जीवन में धार्मिक एवं नैतिक मूल्य आवश्यक हो जाते हैं। संबंधों की नींव पर ही परिवार की रचना होती है। बच्चों द्वारा ईश्वर संबंधी ये मूल्य आसानी से ग्रहण किए

जा सकते हैं कि वही सृष्टिकर्ता है और इस ब्रह्मांड का वहीं निर्माणकर्ता है। स्वयं के साथ, ईश्वर के साथ तथा अन्य के साथ संबंध बच्चों के मन मस्तिष्क के लिए पथ प्रशस्त करेंगे। इसके बाद बच्चे दूसरों के विस्तार के रूप में उनके साथ संबंध बनाना और सामाजिक चेतना विकसित करना सीखेंगे। एक दूसरे के साथ परिवार के संबंधों के बारे में बच्चों के अनुभव के माध्यम से बच्चों में वैयक्तिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक संबंधों का दिनों-दिन विकास होगा।

पारिवारिक मूल्य और सकारात्मक प्रयास

मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सकारात्मक सोच ही प्रसन्नता का रहस्य है। सकारात्मक सोच विकसित करने के उद्देश्य से व्यक्ति को सकारात्मक प्रयास करने चाहिए। जिन परिवारों में माता-पिता एक दूसरे को स्वीकार करते हैं और उन्हें उनके महत्व और उनके योगदानों के लिए प्रोत्साहित करते हैं वहाँ स्वस्थ और प्रसन्नता का वातावरण बनता है। बच्चों को बचपन से ही अपने महत्वपूर्ण परिवारजनों से प्राप्त मान्यता और समझ से स्वयं को सुरक्षित महसूस करने की आवश्यकता होती है। बच्चों की उचित स्व-छवि और देखभाल के लिए परिवारों में सकारात्मक प्रयास प्रभावी हो सकते हैं।

अध्ययनों से पता चलता है कि सर्वाधिक उदासीन और हिंसक व्यक्ति वे होते हैं जिनकी बचपन में निरंतर खिल्ली उड़ाई जाती थी, आलोचना की जाती थी, निंदा की जाती थी और जिनके साथ सख्ती की जाती थी। बच्चों को विशेष रूप से परिभाषित स्वतंत्रता, सम्मान, प्यार, प्रोत्साहन और सराहना के वातावरण में विकसित होने का अवसर प्रदान करने के फलस्वरूप ही राष्ट्र के लिए नई पीढ़ियों के नागरिक तैयार होंगे। इस प्रकार परिवारों के माध्यम से व्यक्तियों में लाए गए परिवर्तन की गुणवत्ता समाज में क्रमिक परिवर्तन लाने के लिए जमीनी आधार तैयार करेगी। अतः माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को एक नवीन मूल्य पद्धति के प्रति निर्देश देने तथा सामाजिक परिवर्तन हेतु परिवारों को अभिकर्त्ता बनाने के लिए सकारात्मक प्रयास पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

विवाह, विदाई का बिन्दु है जिसमें लड़के और लड़कियाँ, भाई और बहनें स्वयं को एक जिम्मेदार नागरिक मानने लगते हैं, वे अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध बनाते हैं तथा वे जीवन संबंधी निर्णय लेने में स्वयं को परिपक्व और समर्थ मानते हैं।

सिफारिशें

समाज को प्रभावित कर सकने वाले तथा उसे बेहतर समाज के रूप में परिवर्तित करने वाले स्थायी मूल्यों वाले परिवारों की संरचना के उद्देश्य से माता-पिता तथा सामाजिक संस्थाओं को बच्चों में निम्नलिखित मूल्यों को स्थापित तथा संप्रेषित करना चाहिएः

1) पारिवारिक जीवन सत्य, विश्वास और न्याय पर आधारित होना चाहिए।
2) परिवारों में शांति, बंधुत्व तथा सहनशीलता की शिक्षा दी जानी चाहिए।
3) परिवारों में जीवन के प्रति सम्मान और धर्मों, नीति शास्त्र और क्षेत्रों को ध्यान में रखे बिना भिन्न-भिन्न धर्मों के प्रति सम्मान की भावना विकसित की जानी चाहिए।
4) दूसरों के कल्याण के लिए उत्तरदायित्व की भावना; समाज और शिक्षण व्यवस्थाओं द्वारा परिवार को समाज की प्राथमिक इकाई माना जाना चाहिए।
5) वयस्क व्यक्ति अंतर विश्वास संवाद के उदाहरण, सामाजिक मुद्दों के विश्लेषक और राष्ट्र निर्माण के प्रणेता होने चाहिए।
6) माता-पिता के प्रयासों और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से बच्चों में सच्ची राष्ट्रभक्ति की भावना जाग्रत की जानी चाहिए।

7) गृह तथा स्कूलों में शिक्षा को मानव-मानव, भाई-भाई और आत्मज्ञान की उत्कंठा हेतु निर्देश देना चाहिए।

8) युवाओं को उनकी ऊर्जा, साहस और नवीन ज्ञान के लिए मान्यता प्रदान की जानी चाहिए तथा बुजुर्गों को उनकी विद्वता और व्यावहारिक ज्ञान के लिए सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए।

9) बच्चों में सही निर्णय और सामान्य ज्ञान का बचपन से ही परिष्करण किया जाना चाहिए।

10) स्वयं निर्णय लेने तथा की गई पसंद का मूल्यांकन करने के लिए अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

11) बच्चों को उनके सौंदर्यबोध, नैतिक, आध्यात्मिक तथा भावनात्मक विकास को ध्यान में रखकर पालन-पोषण किया जाना चाहिए।

12) लड़कों और लड़कियों से घर पर समान रूप से घरेलू कार्य करवाए जाने चाहिए, उनके साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए तथा उन्हें सम्मान दिया जाना चाहिए।

13) विश्व व्यवस्था, सामाजिक अथवा आर्थिक परिस्थितियों के कारण बुजुर्गों और दीन-हीन व्यक्तियों के प्रति करुणा की भावना बच्चों के पाठ्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए।

14) यौन, विकसित होते सौंदर्य की पवित्रता और पारिवारिक जीवन की प्रसन्नता परिवारों में बच्चों के लिए अनुभव का स्रोत होनी चाहिए।

15) अन्ततः यह दृढ़ निश्चय कि इस दुनिया के प्रत्येक माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वह समाज की पुनर्संरचना और दुनिया में क्रांति लाने के लिए एक अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करे।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) माता-पिता द्वारा बच्चों को सिखाए जाने वाले कोई पाँच मूल्य लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 सारांश

इस अध्याय में हमने पारिवारिक मूल्यों, परिवार के प्रकारों और पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित करने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक कारकों की अवधारणाओं पर विचार किया है। हमने संस्कृति और धर्म की अवधारणाओं पर भी दृष्टिपात किया है और यह भी विचार किया है कि व्यक्ति विशेष सामाजिक तंत्र की मूल्य संरचना में कितने महत्वपूर्ण हैं और उनका कितना घनिष्ठ संबंध है।

हमने भारतीय समाज और पारिवारिक मूल्यों की भूमिका के अध्ययन में काफी समय लगाया है। अंत में हमने मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मूल्य संरचना में माता-पिता की भूमिका पर कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं के संबंध में प्रकाश डाला है। परिवार के माध्यम से बच्चों में मानवीय और दैवीय मूल्यों की संरचना और समाज के कायाकल्प में माताओं की भूमिका का उल्लेख किया गया है। परिवार और समाज द्वारा मूल्य संरचना में सहयोगपरक और सह-उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका अपनाने के बारे में भी ध्यान दिया गया है। यह इकाई माता-पिता द्वारा परिवारों को समाज में परिवर्तन लाने वाले अभिकर्त्ताओं को तैयार करने की पहल करने के सिफारिशों के साथ समाप्त होती है।

3.7 शब्दावली

मूल्य : वे गुण जिन पर किसी बात का मूल्य, वांछनीयता अथवा उपयोगिता निर्भर करती है।

संस्कृति : मानवीय बौद्धिक उपलब्धि की वे कलाएँ और अन्य अभिव्यक्तियाँ जिन्हें सामूहिक रूप से माना जाता है।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एम. एम. मैस्करेन्हास, *पारिवारिक जीवन शिक्षा* (हिन्दी), विकास प्रकाशन भवन।

एरिच फ्रॉम (1973), *दी एनाटॉमी ऑफ डिस्ट्रम्टिवेनेस*।

भसीन कमला, (सम्पादित) (1972), *दी पोजीशन ऑफ वूमेन इन इंडिया*।

जोसेफ एंड लुइस बर्ड (1983), *टू लिव ऐज फैमिलीः एन एक्सपीरिएन्स ऑफ लव एंड बॉडिंग*।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो एक दूसरे से संबंधित होते हैं तथा आपसी समझ और सहमति के माहौल में मिल-जुलकर रहते हैं। परिवार वह स्थान है जहाँ पर कोई भी व्यक्ति बिना किसी भय अथवा संकोच के अपनी भावनाओं, अंदरूनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। परिवार एक ऐसा स्थान है जहाँ कोई व्यक्ति अपने को सुरक्षित, अविभाज्य और ऐसे व्यक्ति के रूप में महसूस कर सकता है जो उस स्थान के लिए आवश्यक है। परिवार को उन व्यक्तियों के समूह के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है "जो एक घराने के भीतर मिलजुल कर रहते हैं और आमतौर पर उनकी खान-पान संबंधी आदतें समान होती हैं अथवा जिनका रसोईघर एक होता है।" ऐसे अनुभव और प्रमाण रहे हैं कि सुरक्षा और स्नेह के माहौल में बच्चों का सर्वोत्तम विकास होता है तथा सच्चे प्यार का स्थान और कोई भी वस्तु नहीं ले सकती है।

बोध प्रश्न II

1) क) पारिवारिक जीवन सत्य, विश्वास और न्याय पर आधारित होना चाहिए।

   ख) परिवारों में शांति, बंधुत्व और सहनशीलता की शिक्षा दी जानी चाहिए।

ग) परिवारों में जीवन के प्रति सम्मान और धर्म, नीति शास्त्र और क्षेत्रों को ध्यान में रखे बिना भिन्न-भिन्न धर्मों के सम्मान की भावना विकसित की जानी चाहिए।

घ) दूसरों के कल्याण के लिए उत्तरदायित्व की भावनाः समाज और शिक्षण व्यवस्थाओं द्वारा परिवार को समाज की प्राथमिक इकाई माना जाना चाहिए।

ङ) वयस्क व्यक्ति अंतर विश्वास संवाद के उदाहरण, सामाजिक मुद्दों के विश्लेषक और राष्ट्र निर्माण के प्रणेता होने चाहिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 वैवाहिक जीवन और अपेक्षित भूमिका

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 वैवाहिक जीवन में अपेक्षित भूमिका

4.3 भूमिकाओं में संघर्ष

4.4 विवाह के विभिन्न चरणों में परिवर्तित भूमिकाएँ

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विवाह में स्त्री और पुरुष की अपेक्षित भूमिकाओं का विवेचन करना है। वैवाहिक जीवन में मूल भावनात्मक तथ्यों की चर्चा भी हम करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- वैवाहिक जीवन में स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- वैवाहिक जीवन में कुछ वर्षों बाद भूमिका में होने वाले विशिष्ट परिवर्तनों के बारे में चर्चा कर सकेंगे;
- वैवाहिक जीवन के विवादों को सुलझाने के लिए दम्पत्तियों द्वारा अपनाए जाने वाले विभिन्न उपायों को पहचान सकेंगे;
- असुचारू कार्यप्रणाली वाले परिवारों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों को समझ सकेंगे; और
- वैवाहिक समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक मदद के स्रोतों की पहचान करने में दम्पत्ति का मार्गदर्शन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

आप पिछली इकाई में विवाह और पारिवारिक जीवन में मूल्यों के अर्थ के बारे में पढ़ चुके हैं। उससे संबंधित कुछ प्रश्न इस प्रकार हैं - वैवाहिक जीवन के बारे में आपकी क्या धारणा है? पति और पत्नी के बीच किस प्रकार का संबंध होता है? किसी व्यक्ति के जीवन में वैवाहिक जीवन सौभाग्यशाली, बहुत महत्वपूर्ण और जीवन का सुंदरतम काल माना जाता है। विवाह में दम्पत्ति एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने का वादा करते हैं। इसी आधार पर एक खुशहाल और फलदायक वैवाहिक जीवन का निर्माण हो सकता है।

पति-पत्नी के बीच अंतरवैयक्तिक संबंध ही वैवाहिक जीवन का सार है। यह संबंध लगातार चलने वाला और गौरवशाली प्रक्रिया है। यदि पति-पत्नी वैवाहिक जीवन के अपेक्षित कर्त्तव्यों का पालन कर सकें तो यह संबंध मज़बूत हो सकता है।

इस इकाई में हम पति-पत्नी के बीच के संबंधों की प्रकृति का विवेचन करेंगे। हम वैवाहिक जीवन की अपेक्षित भूमिका और समय के साथ-साथ उनमें आए परिवर्तनों पर भी जोर देंगे। इस इकाई में असुचारू कार्यप्रणाली वाले परिवारों का वैवाहिक जीवन पर प्रभाव का भी उल्लेख करेंगे।

4.2 वैवाहिक जीवन में अपेक्षित भूमिका

शेक्सपीयर ने लिखा है कि "संसार एक मंच है जिसमें पति-पत्नी जीवन रूपी नाटक खेलते हैं।" यही बात विवाह के लिए भी कही जा सकती है। स्त्री और पुरुष के उचित व्यवहार में अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अपेक्षाएँ की जाती हैं। विवाह के लक्ष्य, उद्देश्य और क्रियाएँ केवल तभी प्राप्त हो सकते हैं जब परिवार का प्रत्येक सदस्य सही रूप में अपनी-अपनी भूमिका निभाए।

क) **वैवाहिक भूमिका**

वैवाहिक भूमिका का क्या अर्थ है? किसी समाज विशेष में किसी निश्चित समय पर पति और पत्नी के व्यावहारिक अपेक्षाओं को वैवाहिक कर्त्तव्य कहते हैं। भूमिकाएं जैविक अनिवार्यता की अपेक्षा सांस्कृतिक होते हैं। भूमिकाएं स्त्री और पुरुष में श्रम विभाजन के द्वारा समाज को सुचारू रूप से चलाने की सुविधा प्रदान करती हैं।

ख) **लिंग के आधार पर भूमिकाओं में परिवर्तन**

क्या लिंग के आधार पर भूमिकाओं के निर्धारण के लिए कोई निश्चित नियम है? क्या हम लिंगभेद पर आधारित भूमिकाओं में परिवर्तन कर सकते हैं? बेशक स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं के निर्धारण के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। सांस्कृतिक भिन्नताओं और दम्पत्तियों के उद्देश्यों के कारण वैवाहिक दायित्वों में परिवर्तन आ सकता है। परन्तु वे विवाह के उद्देश्य की प्रकृति की उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः हम समझते हैं कि कुछ वैवाहिक भूमिकाएँ अपरिवर्तनीय हैं।

ग) **भूमिकाओं की अवधारणा में भिन्नता**

पहले स्त्री और पुरुष के कर्त्तव्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होते थे। हम सभी तेज़ी से बदलते हुए समाज में रह रहे हैं। आधुनिक समाज में स्त्री और पुरुष के लिए कोई निश्चित कर्त्तव्य अथवा व्यवहार नहीं हैं। कर्त्तव्यों (भूमिकाओं) की अवधारणा में बहुत अंतर है। लिंगभेद पर आधारित भूमिकाओं में परिवर्तन से हरेक दंपत्ति को बाद में परेशानी होती है।

घ) **भूमिकाओं में परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक**

औद्योगिक क्रांति, नारी उद्धार, शहरीकरण, नारी रोज़गार, पुरुष का जीविका संबंधी रोज़गार में लगना आदि कुछ ऐसे कारक हैं जिन्होंने पारिवारिक भूमिकाओं पर अपना प्रभाव छोड़ा है।

पुरुष की भूमिका

प्रत्येक लिंग की भूमिका उसके नारीत्व और पुरुषत्व पर आधारित होती हैं। स्त्री और पुरुष कुछ निश्चित विशेषताओं के साथ पैदा होते हैं। प्रत्येक संस्कृति में स्त्री और पुरुष से कुछ विशेष भूमिकाओं की अपेक्षा की जाती है।

पुरुष की विशिष्ट भूमिका

पुरुष की प्रमुख भूमिका क्या है? किस आधार पर हम पुरुष को उसकी भूमिका सौंपे? अधिकांश संस्कृतियों में ताकत और साहस को अभी भी पुरुष के ही गुण माना जाता है। वे स्वतंत्र और कठोर भी होते हैं तथा वे नारी की अपेक्षा अपनी भावनाओं को भली भांति नियंत्रित कर सकते हैं। शारीरिक बल और सामाजिक प्रभाव पुरुष की भूमिका है। इसीलिए पुरुष को परिवार का संरक्षक और पालक माना जाता है। वह परिवार का प्रमुख है। पारम्परिक कर्त्तव्यों के अनुसार वह परिवार के लिए आय अर्जित करने वाला और परिवार का मुखिया है। अपनी पत्नी और बच्चों को सहारा देने के लिए उससे नौकरी तलाशने की अपेक्षा की जाती है। उसे कठिनाइयों पर विजय पाने का संकल्प दिखाना होता है।

नेतृत्व की भूमिका

पुरुष की भूमिका में सभी पारिवारिक प्रयासों का नेतृत्व तथा पर्यवेक्षन करना भी शामिल है। बच्चे के लिए उसका पहला हीरो उसके अपने अभिभावक विशेषकर पिता होते हैं जोकि परिवार में विशिष्ट अधिकार लिए होते हैं।

पति के रूप में भूमिका

पति के रूप में उसे यौन साथी, सहयोगी, विश्वासी, निर्णायक और हिसाब-किताब रखने की भूमिका का निर्वाह करना होता है। उसे स्वयं को अच्छे पर्यवेक्षक के रूप में शिक्षित करना होगा ताकि वह अपनी पत्नी की अधिक मदद कर सके। उसे अपनी पत्नी का ध्यान और उसकी योग्यता एवं क्षमता की प्रशंसा करनी चाहिए। उसे अपनी पत्नी का भावनात्मक सहयोग करना चाहिए।

पिता के रूप में भूमिका

परिवार में पिता की रोबदार स्थिति होती है। हमारी संस्कृति में वह घर का प्रमुख अधिकारी होता है। बच्चों को अपने सर्वांगीण विकास के लिए उसकी ज़रूरत होती है। वे अपने पिता से बहुत से अच्छे गुण सीख सकते हैं। उनमें से कुछ गुण हैं – न्याय और ईमानदारी की भावना, दृढ़ निश्चय, सहयोग आदि। अतः उसे निरकुंश हुए बिना दृढ़ होना चाहिए और उसे तानाशाह हुए बिना निर्णायक होना चाहिए, भला होना चाहिए पर कमज़ोर नहीं।

स्त्री के रूप में भूमिका

अधिकतर संस्कृतियों में स्त्री को प्रजनन कार्य के लिए ही अनुकूलित माना गया है।

पारम्परिक भूमिका

स्त्री को जैवकीय, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक रूप से माँ बनने के लिए तैयार किया जाता है। वह जन्म, पालन, सुरक्षा, तुष्टीकरण और पति व बच्चों को सुविधा देने के लिए प्रशिक्षित की जाती है। इन कार्यों को स्त्री के जीवन में अन्य सब कार्यों से अधिक प्राथमिकता दी जाती है। पारम्परिक भूमिकाओं के अनुसार वह बच्चों के पालन पोषण, परिवार के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपने पति की मदद करने और जिस समाज में वह रहती है उसके लिए उपयोगी होने के लिए बनी है। परन्तु क्या सभी स्त्रियाँ इन अपेक्षित भूमिकाओं से संतुष्ट हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त प्रतिभाशाली व महत्वाकांक्षी स्त्रियाँ अपनी विशेष योग्यता का विकास करती हैं।

पत्नी के रूप में भूमिका

पत्नी के रूप में उससे स्नेही साथी, यौन साथी, विश्वासी और पति की सामाजिक सहायिका बनने की अपेक्षा की जाती है। उसे पति-पत्नी के सामाजिक जीवन की कमान लेनी होती है। उसे अपने पति के कार्य में रुचि विकसित करनी चाहिए। उसे पति के क्रियाकलापों को समझना चाहिए। उससे भी अधिक उसे अपने पति को बौद्धिक सहयोग देने योग्य होना चाहिए।

गृह निर्माता के रूप में भूमिका

अपने घर को रहने का सुंदर स्थान बनाना स्त्री का कर्त्तव्य है। उसे अपने परिवार की मूल आवश्यकताओं जैसे पोषण, कपड़े और मनोरंजन आदि का ध्यान रखना होता है।

माँ के रूप में भूमिका

वह अपने बच्चों के समक्ष एक संपूर्ण नारीत्व के विचारों एवं आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने पति के साथ मिलकर काम करती है। बच्चे का प्रथम लगाव अपनी माता से होता है। वह उसके पालन-पोषण, सुविधा और प्यार का स्रोत है।

आज के युग में स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं में परिवर्तन

आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि क्या पति-पत्नी आज के युग में पारम्परिक कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हैं। उनकी भूमिकाओं में क्या परिवर्तन आए है? क्यों? आइए, इन परिवर्तित भूमिकाओं की अवधारणा और परिवर्तनों के कारणों का पता लगाएँ।

कर्त्तव्यों में परिवर्तन का कारण

आज पारिवारिक कर्त्तव्यों और भूमिकाओं में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है क्योंकि वे आधुनिक युग की सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओं के लिए कम उपयुक्त रह गए हैं। अधिकतर परिवार आकार में छोटे एवं महिलाएँ कामकाजी हो गई हैं। हम नारी वर्ग के साथ-साथ पुरुष वर्ग में भी परिवर्तन देख सकते हैं। पुरुष अपनी पहले की बहादुर, कठोर, बलशाली और उग्र छवि नहीं बना रहा है। मृदु, सहनशील, आज्ञाकारी महिला का चरित्र अब बीते दिनों की बात है। शिक्षा, कार्य व पारिवारिक जीवन में दोनों के लिए अवसर खुले हुए हैं। अतः पतियों और पत्नियों के लिए अधिक लोचपूर्ण भूमिका की आवश्यकता है।

आप यह जानने को इच्छुक होंगे कि कर्त्तव्यों की अवधारणाओं में क्या परिवर्तन आए हैं। क्या पुरुष के कर्त्तव्यों में कुछ असमंजस है? हम इन परिवर्तनों के बारे में क्रमानुसार चर्चा करेंगे।

1) **मिली-जुली भूमिका**

शुरू में पुरुष ही परिवार का मुखिया तथा परिवार का प्रमुख अधिकारी होता था। परन्तु पुरुष का शासन अब समाप्त होकर पति-पत्नी के बीच समान भूमिकाओं को दिशा दे रहा है। अधिक से अधिक स्त्रियाँ घर के बाहर रोज़गार के लिए जा रही हैं। अतः पति को अपनी रोटी अर्जित करने की भूमिका को अपनी पत्नी से बाँटना पड़ रहा है। उसे अपनी पारिवारिक संपत्ति के संरक्षक की भूमिका को भी पत्नी को देना होगा क्योंकि वह खर्चों में सहयोग देती है। उसे सामाजिक समारोहों में भी उसकी बराबरी को स्वीकार करना होगा। वे बच्चों की देखभाल के साथ घर के कार्यों में भी हाथ बंटाते हैं।

2) आर्थिक समानता

कामकाजी पत्नी निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब महिला कामकाजी होती है तब अधिकारों में समान साझेदारी दम्पत्ति की प्रवृत्ति होती है। पत्नी पति पर कम आश्रित होती हैं। बदले में पति-पत्नी को संपूर्ण सहयोग देने के बोझ से मुक्त हो जाता है। कामकाजी पत्नियों को पति अधिक भावनात्मक सहयोग देते हैं।

3) पुरुष की नेतृत्व की भूमिका में परिवर्तन

व्यावासायिक ज़रूरतें पुरुष को बहुत लंबे समय के लिए घर से बाहर ले जाती हैं। अपनी उपलब्धियों और सफलताओं की दौड़ में वह परिवार के प्रति अपने प्रमुख दायित्वों को भूल सकता है। स्वभाविक है कि हम पति और पिता को दिए जाने वाले सम्मान में कमी पा सकते हैं। पुरुष के नेतृत्व की भूमिका भी उसी अनुपात में कम हो जाती है। कभी-कभी वे कठिन परिस्थितियों के दायित्वों से बचने के लिए घर से दूर रहते हैं। तब उस परिस्थिति को संभालने की जिम्मेदारी माता के कंधों पर आ जाती है।

क्या होता है जब पिता अपने दायित्वों को पूरा करने में अरुचि दिखाता है? ऐसे मामलों में बच्चों में कुछ विशेष व्यावहारिक समस्याएँ जैसे चिंता, आक्रामकता और विरोध आदि उत्पन्न हो जाती हैं। आप यह अनुभव कर सकते हैं कि परिवार में पिता की भूमिका कम और माता की भूमिका का विस्तार हो रहा है। स्त्री की नई भूमिकाओं के अनुसार पुरुष की भूमिकाओं में परिवर्तन हुआ है।

4) समाज के विभिन्न वर्गों में अपेक्षित भूमिकाएँ

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि समाज के विभिन्न स्तर के वर्गों में लोगों की अपेक्षित भूमिकाएँ एक सी होती हैं? उनमें अंतर है। निम्न स्तर के पुरुषों और महिलाओं में नारीत्व और पुरुषत्व की वहीं पारम्परिक परिभाषा विद्यमान है। उनके लिए अलग-अलग भूमिकाएं निश्चित हैं। परन्तु उच्च और मध्य वर्ग में दम्पत्ति अपने दायित्वों को बाँटते हैं। वे पारिवारिक वित्तीय दायित्वों, बच्चों को बड़ा करने और उन्हें अच्छी शिक्षा देने के दायित्वों में एक दूसरे का सहयोग करते हैं।

क्या मध्यम और उच्च वर्गों में इस प्रकार के संबंध सभी को स्वीकार्य हैं? उत्तर है, नहीं। यह शिक्षित दम्पत्तियों में मान्य हो सकता है। भारत में व्यावहारिक रूप से परिवार में पति की अधिक सुनी जाती है।

5) पुरुष की भूमिकाओं से स्त्री की अपेक्षाएँ

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि आज की संस्कृति में पुरुष अधिक पौरुषहीन हो गया है? स्त्री पुरुष से क्या अपेक्षा करती है?

पुरुष गृहकार्यों में, बच्चों की देखभाल में अधिक रुचि ले रहे हैं। परन्तु अभी भी वे महिलाओं की तुलना में कम विनम्र, कम घरेलू और परिवार के संचालक कम ही होते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि पुरुष को स्त्री की अपेक्षा भौतिकवादी और अधिक सफल बनाने के लिए अभी भी प्रशिक्षित किया जाता है। उनमें अधिक योग्यता, सफलता और सक्षमता है।

स्त्री इनमें से अनेक विशेषताओं की अपेक्षा पुरुष से करती है। अभी भी अनेक महिलाएँ पुरुष को अधिक शक्तिशाली देखना चाहती हैं और कई बार उन पर निर्भर होना चाहती हैं। वह अभी भी शक्तिशाली पुरुष की प्रशंसा करती है और उसके

साथ सुरक्षित महसूस करती हैं। पुरुष को अपनी पत्नी की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए कुछ साहस और शक्ति प्रदर्शन करना पड़ता है।

6) **पत्नी से पति क्या अपेक्षा करता है?**

पत्नी को पति का साथी होना चाहिए। उससे पति को प्यार देने और स्नेह देने की अपेक्षा की जाती है। वह उससे दायित्वों को समान रूप से निभाने की अपेक्षा करता है। वह अपने कार्यों के लिए सहयोग, समर्थन और अपने प्रयासों की सराहना की अपेक्षा करता है।

वैवाहिक भूमिकाओं को प्रभावित करने वाले कारक

वैवाहिक भूमिका प्रतिदिन के जीवन की भूमिका से भिन्न होती हैं। सामान्य भूमिकाओं के निर्धारण की कोई निश्चित पद्धति नहीं है। प्रत्येक दंपति को अपनी भूमिका के स्वरूप का निर्धारण करना होता है। वैवाहिक भूमिकाओं को प्रभावित करने वाले अनेक कारण हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैः

परिवार : पारम्परिक भूमिकाएं अधिकतर परिवार से सीखे जाते हैं। परिवार में आचार-व्यवहार, अपेक्षाओं और आदतों द्वारा ही लड़के-लड़कियाँ अपनी-अपनी भूमिकाओं का मूल प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। कुछ परिवारों में अभिभावक अपने बच्चों को लिंगभेद पर आधारित भूमिकाओं के बारे में जानबूझ कर शिक्षा देते हैं।

बच्चे भी लिंग पर आधारित भूमिकाओं और अधिकारों के बारे में अपने माता-पिता के व्यवहार के अनुकरण द्वारा सीखते हैं।

साथी-समूह : साथी समूह नई प्रवृत्तियों और अपेक्षाओं के प्रति जागरूक होता है और यह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए होता है। ये साधारणतः पारम्परिक भूमिकाओं के विपरीत हैं।

संस्कृति : हमारी संस्कृति में पुरुष को कार्य करने की अधिक स्वतंत्रता है। स्त्रियों से समाज द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार आचरण की अपेक्षा की जाती है। शिक्षा ने उसे आर्थिक और सामाजिक समानता दी है। परन्तु अभी भी वह संस्कृति द्वारा निश्चित पारम्परिक कर्त्तव्यों तक ही सीमित है। इससे वह बाहरी कामकाज के अतिरिक्त घर की देखभाल और बच्चों की देखरेख में भी बंध जाती है।

स्त्री का कामकाजी होना : यह भूमिका उसे प्रकृति ने नहीं बल्कि संस्कृति ने दी है। स्त्रियों पर दोहरा कार्य भार है। रोज़गार ने स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की है और वह परिवार का वित्तीय भार बाँटती है। दिनभर के कार्य के बाद वह थक जाती है। कामकाजी स्त्रियों के लिए तो और भी भावनात्मक और शारीरिक तनाव बढ़ गया है। वह अपने घर की जिम्मेदारियों को नकार सकती है और

यहाँ तक कि अपने पति के यौन संबंध के अधिकार को भी अस्वीकार कर सकती है। पालक के रूप में पति कई बार अपने को अपर्याप्त अनुभव कर सकता है। बच्चे भी देखरेख और निरीक्षण के अभाव में पीड़ित होते हैं। पत्नी भी अपनी वांछित भूमिका निभाने में सक्षम हो सकती है।

कामकाजी महिला को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

1) अपने तथा परिवाा के सभी सदस्यों का अच्छा स्वास्थ्य

2) घर की जिम्मेदारियों में पुरुष की भागीदारी की इच्छा

3) पर्याप्त वेतन

4) यदि परिवार में छोटे बच्चे हों तो माँ का विकल्प तथा

5) परिवार के सभी सदस्यों द्वारा सहयोग।

दम्पत्ति को सामंजस्य स्थापित करने के लिए कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। यदि दोनों ही अपनी नौकरियों के प्रति समर्पित हैं।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) वैवाहिक भूमिकाओं को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पति अपनी पत्नी से क्या अपेक्षा करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.3 भूमिकाओं में संघर्ष

आप यह पहले ही पढ़ चुके हैं कि दम्पत्ति को विवाह के समय अपनी भूमिकाओं के बारे में अवधारणा स्पष्ट होनी चाहिए। यही अवधारणा वैवाहिक समन्वय का आधार होती है। विवाह के लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब इन भूमिकाओं का पालन उचित ढंग से होगा।

क्या आप अपेक्षा करते हैं कि दम्पत्ति हमेशा अपनी वांछित भूमिकाओं के पालन के प्रति दृढ़ रह सकते हैं? यदि नहीं तो क्यों? भूमिकाओं में मतभेद कब उत्पन्न होता है?

जब वांछित भूमिकाओं और दम्पत्ति के वास्तविक व्यवहार में विसंगतियाँ होती हैं तो भूमिका में विवाद उत्पन्न होता है। ऐसा तब भी होता है जब दम्पत्ति भावनात्मक परिवर्तनों के कारण एक दूसरे से नए अथवा भिन्न रूप से जुड़ते हैं।

भूमिकाओं में संघर्ष के कारण

कोई भी दो व्यक्ति पूर्ण रूप से एक समान नहीं होते। उनके व्यवहार, विश्वासों और आचार विचारों में अंतर होता है। पति और पत्नी अपने अपने परिवारों से भूमिकाओं की अलग-अलग अवधारणाएँ ग्रहण करते हैं। विवाह में सफलता के लिए दोनों को अपने-अपने व्यक्तित्व में दूसरे की छवि की समानताएँ प्रस्तुत करनी चाहिए। उन्हें नई भूमिकाओं में समन्वय करने के लिए अपने मूल्यों, व्यवहार और आचार-विचार में परिवर्तन करना होग।

जो स्त्री अपने पति व परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहती है तो उसकी सास उसकी आलोचना कर सकती है। एक आदर्श पत्नी बनने के लिए अपनी सास के साथ समन्वय करने और अपने व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए उसके ऊपर दबाव डाला जा सकता है।

पति और उसके परिवार द्वारा अपेक्षित भूमिका निभाने और पति के कार्य की ज़रूरत के अनुसार अपने को ढ़ालने के लिए जब पत्नी पर दबाव डाला जाता है तो भूमिकाओं में संघर्ष पैदा होता है। जब पत्नी अपने जीवन में स्थापित भूमिका निभाती है तब भी पति को परेशानी होती है।

भूमिकाओं में मतभेद का एक अन्य कारण धन का प्रबंधन है। धन प्रबंधन का अर्थ परिवार की आय को संभालना है। अधिकतर इसी मुद्दे पर विवाद उत्पन्न होता है कि धन की देखरेख कौन करेगा एवं इसे कैसे खर्च किया जाएगा। आप ऐसा सोच सकते हैं कि यह एक साधारण प्रश्न है। परन्तु इस निर्णय के पारिवारिक जीवन पर बहुत प्रभाव होते हैं। यह दम्पत्ति के संबंध और आचार विचार को प्रभावित करता है। परिवार की आय को व्यय करने से संबंधित निर्णय लेने से निरंकुशता, अधीनता, असुरक्षा और हीन भावना आदि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप पति और पत्नी में मतभेद उत्पन्न होता है।

विवाह से अवास्तविक अपेक्षाएँ, यौन दुर्बलताएँ, बच्चों का अनुशासन, अधिकार का संघर्ष आदि विवाह में मतभेद उत्पन्न करने वाले अन्य विषय हैं। फिर भी सबसे अधिक गंभीर समस्या संप्रेषण की समस्या है। गहरी भावनाओं को बाँटने, अपेक्षाओं, इच्छाओं और निजी आवश्यकताओं में संप्रेषण की असफलता प्रकट होती है।

हम भूमिकाओं में संघर्ष को कैसे सुलझा सकते हैं?

विवाह में पति-पत्नी एक दूसरे के जीवन में शामिल होते हैं। अतः कुछ क्षेत्रों में असहमति अनिवार्य है। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि दम्पत्ति इन मतभेदों को कैसे दूर करते हैं।

संघर्ष प्रबंधन

दम्पत्ति द्वारा मतभेदों को सुलझाने के कई मार्ग हैं। पहले तरीके में जब एक साथी निरंकुश हो तथा वह दूसरे को अपनी इच्छाओं का पालन कराने का प्रयास करे और साथी सहयोगी की भूमिका को सहमत हो जाता है तो समन्वय किया जा सकता है। परन्तु जब असहमति अधिक हो तथा दोनों ही झुकने को तैयार न हों तो तनाव बढ़ जाएगा। वे समस्या का वास्तविक समाधान खोजे बिना ही भावनात्मक रूप से एक दूसरे से अलग हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में एक परेशान करने वाली शांति ही प्राप्त हो सकती है। हो सकता है कि कोई झगड़ा न हो परन्तु दोनों ही खुश और संतुष्ट नहीं होंगे।

आप एक दूसरे के व्यक्तित्व को चोट पहुँचाएँ बिना मतभेद को कैसे सुलझाएँगे? समस्या को सुलझाने का उत्तम मार्ग है आपस में एक दूसरे से समझौता कर लेना। दोनों के कर्त्तव्यों और भूमिकाओं में परिवर्तन किया जा सकता है। इससे उन्हें अपने बारे में तथा एक दूसरे के बारे में समझने में मदद मिलेगी। इससे उनका संबंध गहरा होगा।

ध्यान देने योग्य व्यक्तिगत कारक

झगड़ते समय शब्दों के प्रयोग पर बहुत ध्यान देना चाहिए। साथी द्वारा किए गए अच्छे कार्यों पर ध्यान दें। उसकी गलतियों पर ज्यादा ध्यान न दें। झगड़े को समाप्त किए बिना न सोएँ। अपने गुस्से पर नियंत्रण रखें। अपने साथी की अपने माता-पिता से तुलना न करें। समझौता करना, भूलना और माफ करना सीखें। दम्पत्ति का व्यक्तित्व लचीला होना चाहिए। उन्हें एक दूसरे को समझना चाहिए। अनावश्यक आलोचना और एक दूसरे पर लांछन लगाने से बचने का प्रयास करें। आपस में बैठकर परिचर्चा से समस्या को हल करें। यदि आपस में बातचीत करने से भी समस्या का हल न निकले तो पारिवारिक परामर्शक अथवा धार्मिक परामर्शक से सहायता लें। यद्यपि भारत में परामर्शक से सलाह लेने का प्रचलन नहीं है किंतु हमें परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढालना चाहिए।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भूमिकाओं के मतभेद में ध्यान देने योग्य व्यक्तिगत कारकों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 विवाह के विभिन्न चरणों में परिवर्तित भूमिकाएँ

जैसा कि आप वैवाहिक भूमिकाओं के परिवर्तनों के बारे में पढ़ चुके हैं, आपने ध्यान दिया होगा कि विवाह में संबंध स्थिर नहीं रहते। यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। विवाह की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में आप अंतर पाएँगे। प्रत्येक अवस्था में नया समन्वय व पुराने समझौतों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। दम्पत्ति को अपने विवाह को सुचारू रूप से चलाने के लिए अपने विचारों, मूल्यों व लक्ष्यों का पुनर्गठन करना होगा।

विवाह के आरंभिक वर्ष

विवाह दम्पत्ति को जीवन के नए और अनजाने पथ पर ले जाता है। प्रत्येक दिन उसे कुछ निर्णय लेने होते हैं, समस्याओं को सुलझाना होता है और भविष्य की योजनाएँ बनानी होती हैं। विवाह के प्रथम वर्ष में पति और पत्नी एक दूसरे से सर्वाधिक जुड़े होते हैं, खर्चे कम होते हैं, स्वास्थ्य अक्सर अच्छा रहता है एवं आवश्यकताएँ साधारण होती हैं। उनकी जीवन की विशिष्ट योजना का निर्माण हो रहा होता है। दोनों अपने-अपने कार्यों में स्थापित हो रहे होते हैं।

विवाह के पहले और दूसरे वर्ष में काफी समझौते करने पड़ते हैं। समझौतों के कुछ विशिष्ट क्षेत्र जो प्रारंभिक विवाहित जीवन को प्रभावित करेंगे, निम्नलिखित हैं।

पति और पत्नी के बीच संबंध

जब आप विवाह प्रक्रिया में शामिल होते हैं तो कहते हैं कि मैने तुम्हें स्वीकार किया। यह सिर्फ सहभागिता, विचार या साथी का शरीर लेना नहीं है। आप एक दूसरे व्यक्ति को समग्र रूप में स्वीकार करते हैं।

एक दूसरे को स्वीकारना

पति-पत्नी को एक दूसरे को उनकी समस्त कमियों सहित स्वीकार करना चाहिए। साथ ही उन्हें अपनी व्यक्तिगत, निजी योग्यता और आत्म सम्मान भी बनाए रखना चाहिए।

संप्रेषण

पति-पत्नी को आपस में बातचीत करने की इच्छा और सामर्थ्य प्रदर्शित करना चाहिए। बातचीत करना वैवाहिक जीवन का प्राण है। प्यार करना, देखभाल करना अथवा आदर करना ही पर्याप्त नहीं है। प्रेमियों को अपना प्रेम भी व्यक्त करना चाहिए।

लेना और देना

दम्पत्ति में लेने और देने की योग्यता होनी चाहिए। स्वयं को दूसरे को समर्पित करना अत्यंत आत्मीय भावना है। उन्हें सहयोगी होना चाहिए और भावनात्मक रूप से अन्योन्याश्रित होना चाहिए।

भूमिकाओं के संबंध में व्यक्तिगत कारक

आप जानते हैं कि स्त्री और पुरुष शारीरिक संरचना के लिहाज से भिन्न होते हैं। क्या वे इन भिन्नताओं को अपनी भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक संरचना में भी दर्शाते हैं?

जिस प्रकार शरीर की प्रत्येक कोशिका भिन्न होती हैं, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष की प्रत्येक भावना, प्रत्येक प्रतिक्रिया भी लिंग के अनुसार विशेष होती हैं। स्त्री और पुरुष से संबंधित प्रकृति ही उनके वैवाहिक कर्त्तव्य को निश्चित करती है। प्रकृति द्वारा दी गई विशेषताओं का आदर करके तथा अपने कर्त्तव्यों के पालन द्वारा विवाह में सफलता प्राप्त की जा सकती है। अपनी विशेषताओं को दूसरे साथी में देखने की अपेक्षा न करें तथा उसे बदलने की चेष्टा न करें।

व्यक्तिगत आदतें

दम्पत्तियों द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाइयों में से अधिकतर उनके व्यक्तित्व की संरचना उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट आदतें और आचार-विचार अपने बचपन में सीखता है। अतः प्रत्येक साथी विवाह के बाद हमेशा अपनी भिन्न आदतों, आचार-विचार और मान्यताओं के साथ आता है। इन निजी आदतों से विवाह में विवाद उत्पन्न होते हैं जैसे सफाई, नियमितता, घर के रखरखाव में अनियमितता, घर के प्रबंध में, सामाजिक मान्यताओं को मानना आदि। जब दोनों साथी विवाह के आरंभ से ही समझौता करने के इच्छुक हों केवल तभी वे एक साथ सुख से रह सकते हैं।

यौन संबंध

विवाह की सफलता के लिए यौन संबंधों को महत्वपूर्ण कारक क्यों समझा जाता है? ऐसा इसलिए क्योंकि जीवन के अन्य क्षेत्रों में समझौतों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से यौन संबंधों का प्रभाव पड़ता है। यह वैवाहिक संबंधों का भौतिक आधार है। यदि यौन संबंधों में तनाव है तो यह संबंधित व्यक्ति के भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक समन्वय को प्रभावित करेगा।

विवाह में यौन सामंजस्य

आप जानते हैं कि व्यक्ति की यौन संतुष्टि की सुनिश्चितता में जैविक कारण महत्वपूर्ण होते हैं। सांस्कृतिक कारक भी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। अन्य कारक कौन हैं? एक व्यक्ति अपनी यौन भावना कहाँ से प्राप्त करता है?

एक व्यक्ति अपने बाल्यकाल में अपने परिवार और अपने साथी-समूह से यौन संस्कार और अपेक्षाएँ सीखता है। समाज के जिस सांस्कृतिक ढाँचे में वह बड़ा और परिपक्व हुआ है और उस व्यक्ति की जैविक संरचना में वह संस्कार आ जाते हैं। अच्छे समन्वय के लिए यौन विज्ञान और उचित यौन क्रियाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। एक दूसरे के प्रति पूर्ण भावनात्मक स्वीकृति और एक दूसरे के व्यवहार को समझना अच्छे यौन संबंधों के लिए अन्य आवश्यक तत्व हैं।

विवाह में यौन कुसमायोजन

यौन के प्रति प्रतिकूल व्यवहार, यौन और यौन संबंधों के प्रति अज्ञानता, उचित यौन शिक्षा का अभाव, जीवन के आरंभिक वर्षों के प्रतिकूल यौन अनुभव, यौन के बारे में अवास्तविक अपेक्षाएँ और विवाह में साथी के साथ उन्मुक्त होने की अनिच्छा आदि यौन कुसमायोजन के कुछ कारक हैं।

मनोयौन विकास व्यक्ति के यौन जीवन को प्रभावित करता है। विकास के किसी भी स्तर पर जड़ता या पीछे हटना यौन समन्वय पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। फ्रायड के अनुसार "विकास की एक अवस्था में लड़के और लड़कियाँ अपने विपरीत लिंग के अभिभावकों की ओर आकर्षित होते हैं - बेटा माँ की ओर तथा बेटी पिता की ओर।" बेटे में इस क्रिया को ओडिपस भावना तथा बेटी में इसे इलेक्ट्रा भावना के नाम से जाना जाता है। सामान्यतया लड़का और लड़की इस अवस्था से गुजर जाते हैं और अपने लिंग के अनुसार अपने माता–पिता के साथ अपनी पहचान स्थापित करते हैं। यदि वे उसी अवस्था के साथ जुड़े रहते हैं तो उनके वैवाहिक जीवन में जीवन साथी से यौन संबंधों में समस्याएँ पैदा होंगी।

यौन के प्रति असमंजस और यौन के प्रति गलत धारणा

भारतीय समाज में अनेक वर्षों तक यौन एक हौवा था। बुजुर्गों का दकियानुसी विचार किशोरों को यौन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण बनाने से रोकता है। अतएव वे इसकी जानकारी लेने के लिए अन्य स्रोतों की ओर मुड़ सकते हैं। वे गलत दरवाजों को खटखटा सकते हैं और गलत तथा खतरनाक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। विकृत और गलत जानकारी से यौन के प्रति अस्वस्थ धारणा बनती है जो वैवाहिक जीवन में बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न करेगी।

यौन समन्वय में स्त्री एवं पुरुष की भूमिका प्रत्येक की आचार-विचार और अपेक्षाओं पर निर्भर करती है। पति-पत्नी दोनों का यौन के प्रति संतुलित और सकारात्मक रवैया होना चाहिए।

सास-ससुर से संबंध

विवाह केवल स्त्री और पुरुष को ही एक साथ नहीं जोड़ता बल्कि उनके परिवारों को भी जोड़ता है। अतः सास-ससुर विवाह द्वारा बने नए संबंधी होते हैं। आपको आश्चर्य हो सकता है कि क्या हर विवाह में सास-ससुर परेशानियाँ लाते हैं।

कुछ विवाहों में सास-ससुर के साथ संबंध परेशानियाँ उत्पन्न कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न परिस्थिति में रहता है। यदि दामाद अथवा बहू अपने परिवारों में आसानी से

व्यवस्थित हो जाते हैं तो उन्हें आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा वहाँ परेशानियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

माँ का हस्तक्षेप

ससुराल की समस्या में कौन अधिक शामिल होता है? और क्यों?

अधिकतर सास ही ससुराल की समस्या का कारण होती है। माताओं का जीवन अपने बच्चों से जुड़ा होता है। वे बच्चों के बहुत नजदीक होती हैं। कुछ माताएँ अपनी भूमिकाएं छोड़ने के लिए अनिच्छुक होती हैं तथा अपनी ज़िम्मेदारियों को बनाए रखने की कोशिश करती हैं और अपने विवाहित बच्चों से विशेषाधिकार की अपेक्षा करती हैं। बेटे या पति को इस परिघटना को समझना चाहिए और तदनुरूप स्थिति को संभालना चाहिए।

पति की माँ का अधिक हस्तक्षेप

बेटे के जीवन में प्रथम नारी उसकी माँ होती है। बेटे के विवाह के पश्चात् कुछ माताएँ अन्य स्त्री द्वारा बेटे को प्रेम और देखभाल करना स्वीकार नहीं कर सकतीं चाहे वह उसकी पत्नी ही क्यों न हो। पत्नी अपने वैवाहिक खुशियों में अपनी सास को रुकावट मानती है। केवल समझदार और बुद्धिमान पति ही इस समस्या का समाधान कर सकता है। उसे दोनों को ही समान महत्व देना चाहिए। उन्हें आपस में प्रतिद्वंद्वी नहीं बनना चाहिए। पत्नी को माँ से प्रतियोगिता नहीं करनी चाहिए। माँ को नई रुचियाँ ढूँढ़ने का समय देना चाहिए।

अन्य ससुराल वाले

वैवाहिक दम्पत्ति के जीवन में ननद भी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। ससुर और देवर का भी ससुराल की समस्या में छोटा सा हिस्सा होता है। बुर्जुर्गों संबंधियों की देखभाल करना भी समस्याएँ उत्पन्न करता है।

माता-पिता हस्तक्षेप क्यों करते हैं?

जन्म से ही बच्चों के विकास और उपलब्धियों के लिए माता-पिता चिंतित रहते हैं। अतएव जब बच्चों का विवाह हो जाता है तो उनके लिए बच्चों को अनदेखा करना अथवा उनके जीवन के प्रति उदासीन हो जाना बहुत कठिन होता है। साथ ही युवा दम्पत्ति स्वतंत्र होने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। वे अपने माता-पिता का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते।

बहुत से मामलों में माता-पिता आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होते। वे अपने विवाहित बच्चों के साथ रहने को बाध्य होते हैं। यह भी परेशानियाँ उत्पन्न करता है।

ससुराल का सकारात्मक सहयोग

ससुराल से संबंध हमेशा कठिनाई उत्पन्न नहीं करते हैं। यदि युवा पत्नी अपने पति की माँ की प्रशंसा करती है और उसे अपनी दूसरी माँ की तरह प्रेम करती है तो वह उसे अपने लिए मददगार पाएगी।

कर्त्तव्यों में परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

विभिन्न संस्कृतियों में अपेक्षित कर्त्तव्य भिन्न हो सकते हैं। व्यक्ति के चरित्र को संस्कृति स्वरूप देती है। जिस संस्कृति में वह बड़ा होता है वही उसके वैवाहिक दायित्व निर्धारित करती है। दो भिन्न संस्कृतियों से आए दम्पत्ति खास परिस्थितियों में भिन्न व्यवहार करते हैं। उनके विवाह के उद्देश्य भिन्न होते हैं और वैवाहिक लक्ष्य भिन्न होते हैं। उनकी कुछ रुचियाँ समान हो सकती हैं। प्रत्येक अपनी संस्कृति से अक्सर भिन्न मूल्य, आचार-विचार,

परम्पराएँ और रहने के ढंग लाता है। सांस्कृतिक भिन्नताओं से आपसी समझदारी और संप्रेषण कठिन हो जाता है।

एक दूसरे से समन्वय करने के लिए दम्पत्ति को क्या करना चाहिए?

जातीय विवाहों में दम्पत्ति को अन्य की अपेक्षा अधिक समझौते करने होते हैं। विवाह से पहले उन्हें ध्यान से सोचना चाहिए कि क्या ऐसे विवाह में वे हर समझौता करने के लिए तैयार हैं। उन्हें वैवाहिक संतुष्टि प्राप्त करने के लिए समान पृष्ठभूमि के दम्पत्तियों की अपेक्षा अधिक परिपक्वता, समझदारी और दृढ़ निश्चय से काम करना चाहिए। यदि दम्पत्ति एक दूसरे को बिना अपने अनुसार ढाले स्वीकार कर सकते हैं तो वे एक साथ अच्छी तरह रह सकते हैं।

धर्म

समाज अंतर्जातीय विवाह स्वीकार कर सकता है। परन्तु अंतर्धार्मिक विवाह को शायद ही कभी स्वीकृति देता है। अंतर्धार्मिक विवाहों की सफलता दम्पत्ति की परिपक्वता और वास्तविक रूप से स्थिति का सामना करने की योग्यता पर निर्भर करती है। विवाह से पूर्व ही उन्हें विवाह में संभावित कठिनाइयों और उस पर विजय पाने के बारे में स्पष्ट मूल्यांकन करना चाहिए।

मतभेद के क्षेत्र

एक के द्वारा दूसरे को उसका धर्म अपनाने की इच्छा रखने से बहुत बड़ी वैवाहिक समस्या हो सकती है। क्या अभिभावक और मित्र इस रिश्ते को स्वीकार करेंगे? यह एक अलग समस्या है। यह माता–पिता के संबंधों को प्रभावित करता है। बच्चे किस धर्म को मानेंगे, उनकी शिक्षा, बच्चों के प्रशिक्षण का ढंग का चुनाव, प्रजनन नियंत्रण के मापदंड आदि मतभेद के प्रमुख क्षेत्र है।

सामंजस्य

यदि वे एक दूसरे के धर्म को बर्दाश्त करने और समझदार प्रकृति के हैं तथा अपने धर्म को साथी के ऊपर थोपने की इच्छा नहीं रखते तो वे भली प्रकार से एक साथ रह सकते हैं। यदि उन्हें आने वाली कठिनाइयों पर विजय पाने का विचार स्पष्ट है तथा वे अपने समझौतों के लिए काफी लचीले हैं तो उनका विवाह सफल हो सकता है।

प्रारंभिक वर्षों का महत्व

अपने विवाह की सफलता के लिए दंपत्ति को विवाह के आरंभिक वर्षों में उपर्युक्त सभी समझौते करने होंगे। प्रत्येक जीवन साथी को समझना होगा कि वह उसे किन विभिन्न क्षेत्रों में ले जा सकता है तथा वे कौन सी चीजें हैं जिनको उसे छोड़ना है।

प्रारंभिक वर्षों में दम्पत्ति सफलता पूर्वक समझौता करने में सक्षम हो सकते हैं। परन्तु वैवाहिक जीवन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। आयु और परिपक्वता से दम्पत्ति के जीवन में परिवर्तन आ सकता है। जीवन में नए एवं परिवर्तित स्थितियों से पति और पत्नी के भूमिकाओं में अनिवार्य एवं आवश्यक समझौते हो सकते हैं।

बच्चों के आगमन से भूमिकाओं में परिवर्तन

परिवार में बच्चों के आगमन के साथ ही विवाह में अगला अध्याय आरंभ हो जाता है। यह पति और पत्नी के बीच के संबंधों में नई अवस्था के आरंभ का संकेत देता है।

संतानों के साथ जीवन

बच्चों के जन्म के साथ ही कर्त्तव्यों में मूल परिवर्तन होने चाहिए। माता-पिता बनना विवाह में संतुष्टि और पूर्णता लाता है। यह वैवाहिक संबंधों के संपूर्ण चरित्र को मूल रूप से बदल देता है।

अभिभावक में रूपांतरित होने से संबंधित समस्याएँ

बच्चे के आगमन का माता-पिता द्वारा उत्सुकता से, प्रेम और दुलार से इंतजार होता है। परन्तु अभिभावक में रूपातंरण उनके जीवन में अनेक पुनर्समन्वय लेकर आता है। परिवार में बच्चे का आगमन बने बनाए संतुलन को बिगाड़ देता है।

माता-पिता की भूमिका

पैतृक दायित्व व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ लाते हैं।

आर्थिक समस्याएँ

पिता अपने दायित्वों और अतिरिक्त खर्चों के बारे में चिंतित होता है। पत्नी को अपनी नौकरी छोड़कर पूर्ण रूप से गृहस्थ बनना पड़ सकता है। यह परिवार की आय और व्यय को प्रभावित करते हैं।

व्यक्तिगत कठिनाइयाँ

पत्नी अपनी गर्भावस्था और अपने सामाजिक और वैवाहिक जीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को लेकर असहज हो सकती है। पुरुष को भी अपने दायित्वों में परिवर्तन करना पड़ सकता है। जब पत्नी पर बच्चे की देखरेख और घर के कामों का अतिरिक्त भार आएगा तो उसे उसके कार्यों में हाथ बंटाना होगा।

सामाजिक भागीदारी

माता-पिता के सामाजिक जीवन और मनोरंजन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। युवा दम्पत्ति बच्चों की देखरेख में व्यस्त हो जाते हैं। जब वे बच्चे को किसी अन्य को सौंप सकें तभी वे एक साथ सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकते हैं। अन्यथा वे सामाजिक समारोहों में अलग-अलग भाग लेते हैं। फिर भी एक साथ भाग लेना दम्पत्ति को अधिक संतोष देता है।

आप पढ़ चुके हैं कि विवाह के प्रारंभिक काल में दम्पत्ति का बच्चे पर केन्द्रित संबंध होता था। उनकी बाह्य रुचियाँ बहुत कम होती थीं। उनका जीवन अपने बच्चे के आसपास ही बन जाता था।

अनुपयोगी होने की भावना

कुछ महिलाएँ अनुभव करती हैं कि उनका जीवन खाली और व्यर्थ है। जब उनके अभिभावक के दायित्व कम हो जाते हैं तो उनमें अनुपयोगी होने की भावना आ सकती है। ऐसी महिलाओं के लिए अभिभावक के दायित्वों की समाप्ति एक घातक अनुभव है। ये तंत्रिका रोगों का कारण बन सकता है। वे नई विधाओं को सीख कर कुछ गतिविधियों में व्यस्त हो सकती हैं। पति अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं। इस तरह वे परिवार में परिवर्तनों में समन्वय कर सकते हैं।

ससुराल से सामंजस्य

बच्चों का विवाह हो सकता है और माता-पिता को बच्चों के जीवन साथी से सामंजस्य करना होगा। बूढ़े अभिभावकों की देखभाल एक अन्य समन्वय है। बूढ़े की देखभाल से

वह स्थान भर सकता है जब बच्चे घर छोड़ते हैं। परन्तु अधिकतर मामलों में वृद्ध अभिभावक् की सेवा से सामाजिक भागीदारी और नई रुचियों में विकास से दंपत्ति को वंचित होना पड़ता है।

दादा-दादी के रूप में कर्त्तव्य

आप भली प्रकार से परिचित होंगे कि स्त्री और पुरुष मध्यम आयु की समाप्ति से पहले दादा-दादी बन जाते हैं। यह दम्पत्ति के जीवन का नया दायित्व है।

औपचारिक भूमिका

जहाँ तक पोतों की देखभाल और अनुशासन का संबंध है कुछ दादा-दादी औपचारिक दायित्व निभाकर हाथ खींच लेते हैं।

प्रतिनिधि अभिभावक के दायित्व

कुछ अन्य मामलों में वे बच्चों की देखभाल का दायित्व संभालते हैं। दादी माँ इस दायित्व में अधिक योग्य होती हैं।

मनोरंजन खोजी भूमिका

यह भूमिका मनोरंजन चाहने वालों की है। दादा-दादी अपने अपने बच्चों से इस औपचारिक मनोरंजन भूमिका का आनंद लेते हैं।

ज्ञान दाता की भूमिका

इस दायित्व में वे अपने पोतों को विशेष ज्ञान और कुछ निश्चित विधाएँ सिखा सकते हैं। माता-पिता की पूर्व भूमिका की अपेक्षा दादा-दादी की भूमिका उन्हें अधिक संतोष प्रदान करती है।

वृद्धावस्था में दायित्वों में परिवर्तन

आपने दम्पत्ति की प्रारंभिक युवावस्था और मध्यम आयु में परिवर्तित भूमिकाओं पर अवश्य ध्यान दिया होगा। वृद्धावस्था के दौरान क्या परिवर्तन होते हैं? दम्पत्ति इन परिवर्तनों से कैसे सामंजस्य करते हैं? आप यह भी जानते हैं कि विवाह के आरंभिक वर्षों में दम्पत्ति का बेहद नजदीकी व प्रगाढ़ संबंध होता है, जो बाद में संतान केन्द्रित संबंध बन जाता है। वृद्धावस्था में यह दोबारा युगल केन्द्रित संबंध बन जाता है।

सेवानिवृत्ति के प्रभाव

पति की सेवानिवृत्ति के बाद परिवार पद्धति में एक बार फिर परिवर्तन आते हैं। इस अवधि में शायद सबसे अधिक समन्वय उत्पन्न होते हैं। पति के अवकाश प्राप्त करते ही उसे वृद्धावस्था का अपमान झेलना पड़ता है। वह स्वयं को अनचाहा अनुभव करता है तथा दूसरे व्यक्ति के मुकाबले का उसके पास कोई उद्देश्य नहीं होता। वह खोया-खोया अनुभव करता है तथा वह नहीं जानता कि अपने खाली समय का क्या करे। वह अप्रसन्न और दुखी हो जाता है। वह अपनी पत्नी के प्रति चिड़चिड़ा व्यवहार करता है। वह अपने जीवन साथी की हमेशा गलती ढूँढ़ कर उसकी आलोचना करता रहता है। वह अपनी पत्नी के घर के कामों में यह सोचकर मदद नहीं करता कि ये तो स्त्री के कार्य हैं।

सामान्य रुचियाँ

सेवानिवृत्ति दंपत्ति को अधिक समय तक साथ-साथ रहने के लिए मजबूर करता है। एक साथ रहकर मनोरंजक गतिविधियों में साहचर्य का एक तरीका विकसित कर सकते हैं। इस तरह की पद्धति जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी अपनाई जा सकती है। समय के साथ-

साथ आपसी रुचियाँ विकसित हो जाएँगी। जब बच्चे घर छोड़कर जाएँगे तो वे एक दूसरे के अधिक करीब आ जाएँगे।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) विवाह में यौन-कुसमायोजन से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) वृद्धावस्था में परिवर्तित भूमिकाओं पर एक नोट लिखो।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने वैवाहिक जीवन में अपेक्षित भूमिकाओं का विश्लेषण किया है। हमने वैवाहिक जीवन में स्त्री और पुरुष के दायित्वों का भी वर्णन किया है। हमने वैवाहिक दायित्वों के चयन को प्रभावित करने वाले कारकों की भी चर्चा की है। इस इकाई में एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू की भी चर्चा की गई है। विवादित कर्त्तव्य, दायित्वों में मतभेद के कारण और मतभेद प्रबंधन।

हमने विवाह की भिन्न अवस्थाओं में होने वाले दायित्वों के परिवर्तन की भी चर्चा की है। अपेक्षित दायित्वों से संबंधित चारित्रिक कारणों के अतिरिक्त हमने ससुराल से संबंधों, दायित्वों के परिवर्तन में सांस्कृतिक व धार्मिक कारणों के साथ ही अभिभावक में रूपांतरित होने से संबंधित संक्रमण पर भी चर्चा की है।

4.6 शब्दावली

वैवाहिक दायित्व: विशिष्ट समाज में किसी विशेष समय में पति और पत्नी की व्यावहारिक अपेक्षाओं को वैवाहिक दायित्व कहते हैं।

दायित्वों में मतभेद: अपेक्षित दायित्वों व दम्पत्ति के वास्तविक व्यवहार में असमानताओं से दायित्वों में मतभेद उत्पन्न होता है।

प्रतिनिधि अभिभावक: व्यक्ति जो माता अथवा पिता की भूमिका निभाता है।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारत एस. (संपा.) (1991), *रिसर्च ऑन फैमिलीज विद प्रोबलम्स इन इंडिया इश्यूज एंड इंप्लीकेशन्स*, वाल्यूम-1, मुम्बई, TISS

चटर्जी एस. (1988), *दि इंडियन वूमेंस सर्च फॉर एन आइडेंटीटी*, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

भारत में नारी की स्थिति पर कमेटी (1974), *समानता की ओर*, भारत सरकार, समाज कल्याण विभाग, नई दिल्ली।

गोरे, एम. एस. (1968), *भारत में शहरीकरण व परिवार में परिवर्तन*, जनसंख्या प्रकाशन, मुम्बई।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) किसी समाज विशेष में किसी खास समय में स्त्री और पुरुष की व्यावहारिक अपेक्षाएँ ही वैवाहिक दायित्व है। ये दायित्व शारीरिक अनिवार्यताओं की अपेक्षा सांस्कृतिक उपलब्धि है। स्त्री व पुरुष में श्रम विभाजन द्वारा ये दायित्व समाज को सुचारू रूप से चलाने की सुविधा उपलब्ध कराते हैं।

2) पत्नी को पति का सहयोगी बनना चाहिए। उससे प्यार और दुलार की अपेक्षा की जाती है। उससे दायित्वों को बाँटने की अपेक्षा की जाती है। वह उससे अपने कार्यों के लिए सहयोग, समर्थन व पहचान की अपेक्षा करता है।

बोध प्रश्न II

1) झगड़ा करते समय शब्दों के प्रयोग के बारे में ध्यान देना चाहिए। अपने साथी की अच्छी चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। उसकी गलतियों पर अधिक ध्यान न दें। झगड़े को निपटाए बिना न सोएँ। अपने गुस्से पर नियंत्रण रखें। अपने जीवन साथी की तुलना अपने माता-पिता से न करें। समझौता करना, भूलना एवं माफ करना सीखें। दम्पत्ति का व्यक्तित्व लचीला होना चाहिए। उन्हें एक दूसरे को समझना चाहिए।

   अनावश्यक आलोचना और दूसरे पर लांछन लगाने से बचें और आपसी चर्चा से समस्या का समाधान ढूँढ़ें। यदि समस्या नहीं सुलझ रही हो तो आपको पारिवारिक परामर्शदाता अथवा आध्यात्मिक परामर्शदाता से परामर्श लेना चाहिए। भारत में परामर्शदाता से मदद लेना प्रचलित नहीं है लेकिन बदलती स्थितियों के अनुसार हमें इसे अपनाना होगा।

बोध प्रश्न III

1) यौन के प्रति प्रतिकूल व्यवहार, यौन और यौन संबंधों के प्रति अज्ञानता, उचित यौन शिक्षा का अभाव, जीवन के आरंभिक वर्षों में प्रतिकूल यौन अनुभव, विवाह में अवास्तविक यौन अपेक्षाएँ और अपने जीवन साथी से खुलने की अनिच्छा आदि यौन कुसमायोजन के कुछ कारण हैं।

2) हम यह भी जानते हैं कि विवाह के आरंभिक वर्षों में दम्पत्ति का आपस में बेहद नजदीकी एवं प्रगाढ़ संबंध होता है। बाद में यह संबंध बच्चे पर केन्द्रित हो जाता है। वृद्धावस्था में यह दुबारा युगल केन्द्रीय संबंध बन जाता है।

व्यक्ति के जीवन की भिन्न अवस्थाओं में कर्त्तव्यों में परिवर्तन होता है। युवा काल के प्रारंभ और मध्य में ये दायित्व बदलते रहते हैं। उसी प्रकार वृद्धावस्था में व्यक्ति के दायित्व भिन्न आकार ले लेते हैं। उदाहरण के लिए बूढ़े लोगों को दादा-दादी की भूमिका दे दी जाती है। उनके बच्चे व पोते दोनों ही उत्सुकताओं को उनसे बाँटना चाहते हैं तथा अक्सर विवादपूर्ण स्थिति को संभालने के लिए मार्गदर्शन चाहते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY